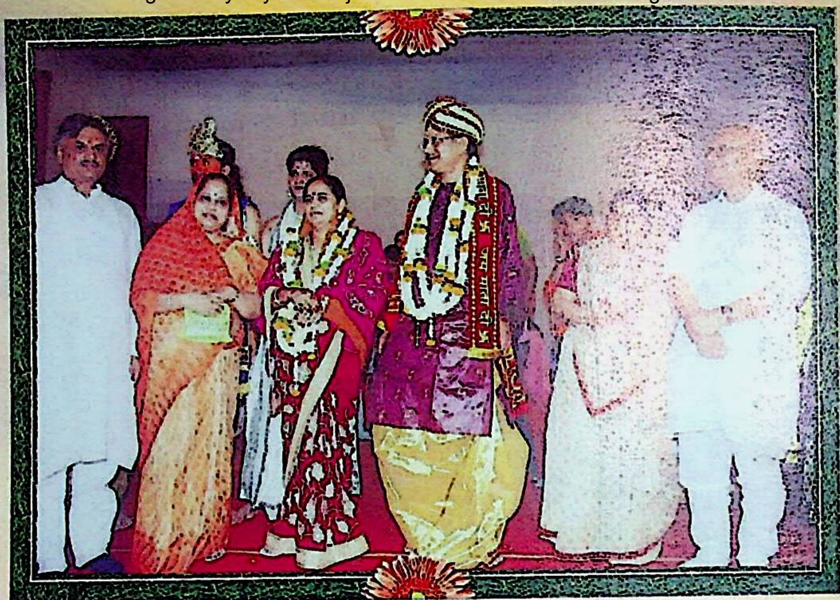
173

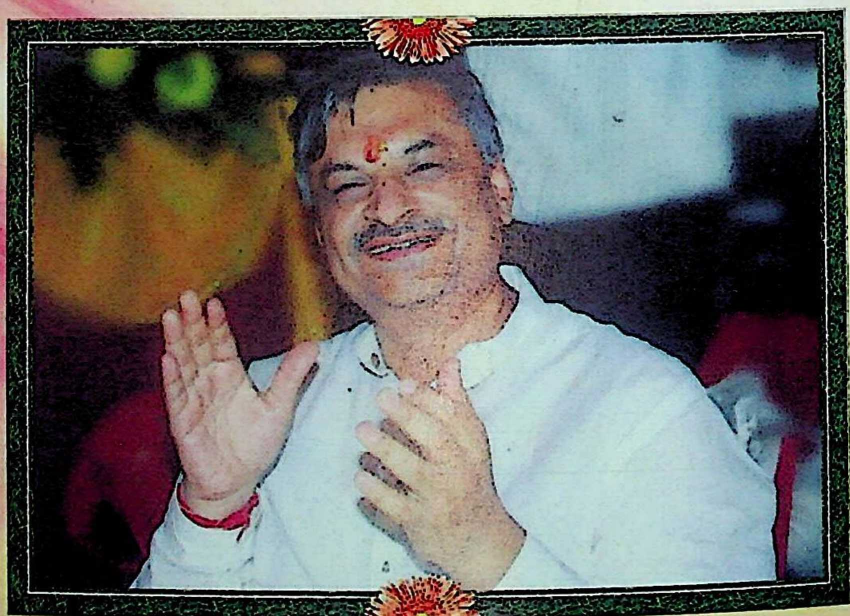
विराट

आध्यात्मिक पत्रिका





दिनांक २७ मई २००८ को आयोजित वार्षिकोत्सव के समापन पर लिया गया चित्र
(बायें से श्री सत्यनारायण झुनझुनवाला, श्रीमती अंजू झुनझुनवाला, श्रीमती किरण त्रिपाठी,
आचार्य हरिहर कृपालु त्रिपाठी जी महाराज, श्रीमती किशोरी झुनझुनवाला एवं श्री दीनानाथ झुनझुनवाला



वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिनांक २७ मई ०८ को ध्वजयात्रा का प्रसन्नतापूर्वक
अवलोकन करते हुए श्री सत्यनारायण झुनझुनवाला

विराट

वार्षिक आध्यात्मिक पत्रिका

(वर्ष २००८-०९ संवत् २०६५ वि.)

महामहोपाध्याय ब्रह्मर्षि आचार्य डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी
कुरहंसआश्रम, अजमतगढ़ स्टेट, आजमगढ़

शिवशक्ति धाम, पटिया, वाराणसी
मो.नं. ९८८९९१९९९९

झुनझुनवाला भवन, नाटी इमली, वाराणसी
फोन नं. ०५४२-२२११३१२, २२११३१३

प्रबन्ध सम्पादक

श्रीमती एवं श्री सत्यनारायण झुनझुनाला

प्रधान सम्पादक

आचार्या श्रीमती किरण त्रिपाठी

सम्पादक

डॉ० जितेन्द्रनाथ मिश्र

प्रकाशक

दीनानाथ झुनझुनवाला

सौजन्य से -

१. झुनझुनवाला सेवा सोसाइटी, वाराणसी.
२. अनुपम संचेतना ट्रस्ट, वाराणसी.

मुद्रक -

डी.जी. प्रिंटर्स
वाराणसी, मो. ९९३५४०८२४७

विषय-सूची

◆

सम्पादकीय

दुर्गासप्तशती के ग्यारहवें अध्याय का ३१ वाँ श्लोक है-

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्याषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽति महान्धकारे,
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्।।

इस श्लोक का भाव यह है कि विश्व के समस्त ज्ञान और अज्ञान, प्रकाश और अंधक़ार, बंधन और मुक्ति- सभी की एकमात्र कारणभूता शक्ति जगदम्बा ही हैं। जितनी विद्याएँ हैं, जितने शास्त्र हैं, विवेक के प्रकाशक जितने उपक्रम हैं, जितने वाद्य हैं और जितने वाक्य हैं- सभी का अस्तिव जिस शक्ति के कारण है, वह महादेवी के अतिरिक्त किसकी हो सकती है?

चौथे अध्याय में इस महाशक्ति को शब्दात्मिका बतलाया गया है और 'विराट' के इन नवम अंक का गुरुपूर्णिमा महोत्सव के अवसर पर प्रकाशन वस्तुतः शब्दात्मिका महामाया की इच्छा का परिणाम है। ज्येष्ठ पूर्णिमा को प्रातःकाल आदरणीय श्री दीनानाथ झुनझुनवाला से मुलाकात हुई तो मैंने पूछा- 'इस वर्ष 'विराट' नहीं निकलेगा क्या?' उन्होंने कहा, 'क्या बताऊँ? निकलना तो चाहिये। लेकिन मैं इधर बाहर-बाहर रहा और सूर्यपाल सिंह जी की पोस्टिंग भी दूर है। कोई बातचीत सध नहीं पाई।' मैंने कहा, जाने दीजिये। अब इस वर्ष संभव भी नहीं है। कल से आषाढ़ लग जायगा और गुरुपूर्णिमा पर ही पत्रिका छपती है। कब सामग्री संकलन होगा, कब छपाई होगी और कैसे समय पर पत्रिका तैयार होगी।'

लेकिन अगले ही दिन 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' झुनझुनवाला जी का संदेश मिला कि प्रातः सात बजे सूर्यपाल सिंह आने वाले हैं। आप भी आ जाइये। बातचीत हुई और तय हुआ कि पत्रिका समय पर आनी ही है। मैं बहुत उत्साहित नहीं था क्योंकि अपनी एक पुस्तक के संशोधन में पहले से व्यस्त चला आ रहा था और २०-२५ दिन के भीतर पत्रिका का सारा काम

पूरा हो जाना सचमुच पहाड़ जैसा लगता है। किन्तु जगदम्बा की इच्छा, उनके अनन्य आराधक गुरुवर डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी जी की प्रेरणा, दीनानाथ जी, सत्यनारायण जी और सूर्यपाल जी की संकल्पशक्ति तथा डी.जी. प्रिंटर्स के राजकुमार जायसवाल की निष्ठा— कुल मिलाकर ऐसा बानक बना कि 'विराट' ठीक समय पर जगज्जननी के चरणों में समर्पित होकर उनके प्रसाद के रूप में पाठकों के हाथ पहुँच रहा है।

भगवती की कृपा की इस प्रत्यक्ष अनुभूति का आनन्द ही अलग होता है, जिसका अनुभव इस क्षण हम कर रहे हैं। हम बिना मतलब ही अपने को कर्त्ता मानकर परेशान होते हैं किन्तु हम हैं कौन? करने-कराने वाली तो अठारह भुजाएँ धारण करके यहाँ विराजमान है। वह जो चाहती है, करा लेती है। चाहे जिसे निमित्त बनाकर वह श्रेय दे देती है। 'विराट' के संपादन का श्रेय मुझे मिल रहा है, करुणामयी माँ की इस कृपा से मैं अभिभूत हूँ।

अप्रैल १९९८ में शिवशक्तिधाम पटिया में विराट महायज्ञ का आयोजन हुआ था। उसी महायज्ञ के सुफल के रूप में 'विराट' के प्रकाशन का संकल्प लिया गया था। इस संकल्प के मूल में पूज्य आचार्य डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी जी का एक सूत्र था- 'जोड़ो और ज्योति जलाओ'। भारतीय सनातन धर्म के सिद्धान्त प्राणिमात्र की एकता का प्रतिपादन करते हैं। इन सिद्धान्तों का समुचित ज्ञान न होने के कारण ही समाज में भेद-भाव तथा अलगाव की प्रवृत्तियाँ पनपती हैं। भारतीय ज्ञान की वह सनातन ज्योति जलती रहे और उसका प्रकाश सामान्य से सामान्य व्यक्ति को निर्बाध रूप में सुलभ हो, यही विराट के प्रकाशन का उद्देश्य था।

हमें संतोष है कि अत्यल्प समयावधि के बावजूद विराट का यह अंक अपने उद्देश्य के अनुरूप यथेष्ट प्रेरणापूर्ण तथा मनुष्य जीवन को समुन्नत बनाने वाले विचारों और भावों से समन्वित है।

विश्वास है, धर्मप्राण पाठक इसे भी पहले की अंकों की तरह श्रद्धा एवं प्रेम के साथ अपनायेंगे।

जितेन्द्रनाथ मिश्र
संपादक

वाराणसी
गुरुपूर्णिमा २०६५ विं०

गुरुपूर्णिमा महोत्सव पर परमपूज्य गुरुदेव ब्रह्मर्षि डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी के आशीर्वचन

गुरुपूर्णिमा महोत्सव के अवसर पर विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी 'विराट' का प्रकाशन किया गया है, यह अष्टादशभुजा माता की अहैतुकी कृपा का प्रसाद है। उन्हीं की कृपा से सुमति उत्पन्न होती है और सत्कार्य में मनुष्य की प्रवृत्ति होती है। इसलिये श्री दीनानाथ झुनझुनवाला और उनके परिवार या श्री सूर्यपाल सिंह या इस पत्रिका के प्रकाशन, सम्पादन और लेखन आदि में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जिन लोगों का योगदान रहा है, सभी पर परम करुणामयी जी माँ की कृपा है, यह प्रत्यक्ष है। क्योंकि उसकी कृपा से ही मनुष्य की बुद्धि सेवा, परोपकार और मानवकल्याण के शुभ कार्यों में लगती है।

वास्तव में आज के आदमी की सबसे बड़ी समस्या यही है कि वह अपनी बुद्धि का विवेकसम्मत उपयोग नहीं करता। मानव बुद्धि की गौरव गरिमा का ज्ञान ही उसे नहीं रह गया है। इसीलिये भौतिक उन्नति के चरमशिखर पर पहुँचकर भी वह रंक बना हुआ है। वेदों, पुराणों तथा धर्मग्रन्थों में बार-बार यह बतलाया गया है कि मनुष्य और मनुष्यता सर्वश्रेष्ठ है— **नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।'** किन्तु मनुष्य की श्रेष्ठता किस बात के लिये है, इस पर दिमाग स्पष्ट होना चाहिए। आहार-विहार और भोगविलास के अच्छे से अच्छे साधनों का अम्बार जुटाने के लिये मनुष्य श्रेष्ठ नहीं बताया गया। वह श्रेष्ठ है तो इसलिये कि अपनी मेधा, प्रतिभा, शक्ति और साधना के बल पर उत्कृष्ट से उत्कृष्ट साधन उपलब्ध करते हुए भी वह इन साधनों से बँधता नहीं अपितु साध्य अथवा मुक्ति का चिंतन करता है। **'बड़े भाग मानुष तन पावा'** ऐसा इसलिये कहा गया कि यह मनुष्य शरीर **'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा'** है।

मनुष्य बुद्धि की पहचान ही यही है कि वह प्राप्त साधन का सर्वोत्कृष्ट उपयोग करता है। जो नहीं करता उसकी दशा प्रसिद्ध कहानी में बतलाये गये लकड़हारे से अलग नहीं होती।

वह लकड़हारा था- बहुत मोटी बुद्धि का। दिन भर जंगल में

लकड़ियाँ काटता और बेचकर अपना तथा अपने परिवार का पेट पालता। एक दिन संयोगवश राजा उसका अतिथि बन गया। हुआ यह कि आखेट के लिये निकला राजा जंगल में मार्ग भूल गया। भूख-प्यास का मारा वह अकेला भटक रहा था कि उसकी दृष्टि लकड़हारे पर पड़ी। लकड़हारे ने राजा को पीने के लिए पानी दिया, खाने के लिए मोटी रोटी और साग दिया। उसको जंगल से निकलने का मार्ग भी बतला दिया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। लकड़हारे को सुखी एवं संपन्न जीवन के लिये परिवार सहित वह अपने साथ ले जाना चाहता था किन्तु लकड़हारे को तो अपना जंगली परिवेश ही प्रिय था। वह किसी तरह तैयार नहीं हुआ। तब राजा ने उससे आग्रह किया कि जब कभी आवश्यकता पड़े वह निस्संकोच दरबार में आकर यथेष्ट सहायता प्राप्त करे।

बात आई-गई, हो गई। काफी समय बाद लकड़हारा सचमुच विपत्ति में पड़ गया। विपदा का कारण यह था कि जिस जंगल में लकड़ियाँ काटकर वह गुजारा करता था, उसमें अब वृक्ष ही नहीं बचे। अब वह कहाँ से लकड़ियाँ काटे, उन्हें जलाये, कोयला बनाये और बेचकर बाल-बच्चों को पाले। गाढ़े समय में उसे राजा की याद आयी। उसने दरबार में अपनी फरियाद की। कृतज्ञ राजा ने दिल खोलकर उसकी सहायता करनी चाही और चंदन का एक वन उसके नाम कर दिया। राजा की सोच थी कि यह सोना-चाँदी, जमीन-जायदाद चाहता नहीं, तो चलो, बहुमूल्य लकड़ी वाला जंगल ही दे दें ताकि इसकी दरिद्रता कट जाय।

लेकिन लकड़हारा दरिद्र का दरिद्र बना रहा। कई वर्षों बाद राजा को लकड़हारे की याद आई तो वह उससे मिलने के लिये चल पड़ा। उसके मन में कल्पना थी कि बहुमूल्य चंदन बेचकर लकड़हारा अब दौलतमंद बन चुका होगा और अब वह राजसी ठाटबाट में रहता होगा। किन्तु यह क्या? लकड़हारा तो वैसे का वैसा दिखलाई पड़ा। उसे पहले से भी अधिक चिन्तमग्न देखकर राजा ने कारण जानना चाहा तो उसने बतलाया- 'सरकार, इस जंगल के भी अधिकांश वृक्षों को तो वह कोयला बनाकर बेच चुका। थोड़े ही पेड़ बचे हैं। उनके भी कट जाने पर वह क्या करेगा, यही चिंता खाये जा रही है।'

राजा ने माथा ठोंक लिया, बोला- अरे लकड़हारे, तूने यह क्या किया? चंदन के इन वृक्षों को तूने कोयला बना डाला? यह मूल्यवान

लकड़ी हमेशा-हमेशा के लिए तेरी दरिद्रता दूर कर सकती थी किन्तु इसका मूल्य तूने नहीं पहचाना। अच्छा! जा, इसका यह एक टुकड़ा बाजार में बेच आ।

लकड़हारा लकड़ी का एक-दो फीट का एक टुकड़ा लेकर एक दुकान पर पहुँचा। दुकानदार ने देखा-लकड़ी चंदन की है- और पूछा- क्या लोगे? लकड़हारा क्या बोले? उसने उल्टे पूछा- 'क्या दोगे?' दुकानदार ने कहा- 'एक रुपया दूँगा' तो उसने आश्चर्य के साथ कहा- एक रुपया क दुकानदार को लगा कि यह गँवार कुछ जानकार है तो उसने कीमत कुछ बढ़ाई। इतने में दूसरा दुकानदार उतरा और उसने दस रुपये मूल्य देकर वह दुकड़ा खरीद लिया।

अब जाकर लकड़हारे को अपनी गलती का एहसास हुआ किन्तु अब पछताये होते क्या जब चिड़िया चुग गई खेत। राजा ने प्रसन्न होकर उसे बहुमूल्य संपदा दी थी जिसे उसने रोटी-दाल की चिंता में कोयला बनाकर गँवा दिया।

हममें से भी अधिसंख्य की दशा उस लकड़हारे जैसी है। राजाओं के राजा- सम्राटों के सम्राट्-परमात्मा ने न जाने किस जन्म के हमारे किस कृत्य पर प्रसन्न होकर हमें मानव-तन-मर्न का यह चंदन-वन दे रखा है। इसके मूल्य और महत्त्व को अगर हम नहीं समझते तो हम किस माने में उस लकड़हारे से बेहतर हैं?

लेकिन राजा की कृपा से लकड़हारे को देर से ही सही, बोध तो हुआ! बहुत कुछ नष्ट हो चुका तो भी अभी कुछ चंदन वृक्ष शेष है। जब जागे, तभी सबेरा। देर से जगा तो भी लकड़हारे का शेष जीवन सुघर गया।

हमारे लिये भी यही आश्वस्ति की बात है और यहीं गुरु की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। इसी भूमिका के कारण गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी बढ़कर साक्षात्परब्रह्म कहा गया है—

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

गुरु साक्षात्परब्रह्म इस लिये हैं कि वह हमें हमारी पहचान कराता है। विधाता की योजना में 'लकड़हारा' की भूमिका हमें मिली हुई है और लकड़ी भी उसी की दी हुई हमारे सामने हैं किंतु हम अज्ञानवश लगातार उसका कोयला बनाते जा रहे हैं और हमारी यह वस्तुस्थिति तभी बदलेगी जबकि उसी की कृपा से हमें योग्य गुरु की उपलब्धि हो जाय। गुरु तमाम प्रकार के अज्ञानजनित भ्रमों का अनायास निराकरण करके हमारे भीतर अपने चंदनवन

के मूल्य एवं महत्व की दृढ़ आस्था उत्पन्न कर देता है।

सृष्टि तो जैसी है, वैसी है। बनाने वाले ने वैसा ही क्यों बनाया, यह प्रश्न करने का अधिकार हमें नहीं है। तुलसीदास ने एक वाक्य में बतला दिया- 'जड़ चेतन गुण-दोषमय विश्व कीन्ह करतार।' त्रिगुणात्मक सृष्टि में सात्विक, राजसिक और तामसिक तीनों प्रकृतियों का अस्तित्व अनिवार्य है। इस लिये सृष्टि पर हमारा वश नहीं है किन्तु जो 'चंदनवन' हमें मिला है वह तो हमारे वश में है। उसके प्रति हमारी दृष्टि निर्भ्रान्त हो तो हमारे लिए दुःख से निवृत्ति और सुख की प्राप्ति का मार्ग कठिन नहीं है। हम सृष्टि का रोना रोते हैं किन्तु यह ध्यान नहीं देते कि हमारी समस्याओं का मूल कारण हमारी दृष्टि है, सृष्टि नहीं। गुरु की कृपा से जब हमारी दृष्टि निर्मल हो जाती है तो यही सृष्टि हमें आनंदकर लगने लगती है। इसी लिये तुलसीदास ने 'गुरु पद-रज' को 'मृदु मंजुल अंजन' बतलाया है-

बन्दउँ गुरु-पद-कंज-कृपासिंधु नर रूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रवि-कर-निकर।।

बंदउँ गुरु-पद-पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।।
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव-रुज परिवारू।।
सुकृति संभु-तन विमल विभूती। जन मन-मंगल मोद प्रसूती।।
गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग-दोष-विभंजन।।

यह दृगदोष ही है जो महामोह का कारण बनता है और अपने चंदनवन को हम कोयले के रूप में बरबाद करते रहते हैं। गुरु की कृपा से जब दृष्टि बदलती है तो सुरुचि, सुबास और सरस अनुराग से भरे मन में आस्था और विश्वास का संचार हो जाता है और वह सुकृति के लिए प्रेरित होता है।

तुलसीदास की इस गुरु-वंदना के अर्थ बहुत गहरे हैं। इसकी व्याख्या यहाँ नहीं करनी है किन्तु यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि गुरु की आवश्यकता परलोक के लिए उतनी नहीं है जितनी लोक के लिये। गुरु के मार्गदर्शन में हमें अपना लोक संवारना है। लोक सँवर जाय इसी की हमें पहले चिंता करनी चाहिए। जिसका लोक सँवर जाता है, वह तो जीते जी अपने इसी जीवन में मुक्त रहता है। उसे मुक्ति के लिए मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

यह 'मुक्ति' भी अद्भुत शब्द है। इसकी तरह-तरह से शास्त्रों में व्याख्या की गई है फिर भी इसे लेकर आज तक भ्रम बना हुआ है। मुक्ति

का सीधा अर्थ है- बंधन से मुक्ति। बंधन क्या है? बंधन है आत्मा को शरीर से बाँधकर देखना और समझना। यह बंधन इसलिये बना रहता है कि हमारी दृष्टि बाहर देखने की अभ्यस्त है, फिर भी आँखों-देखा होने के कारण उसे हम सत्य मान लेते हैं। यही वस्तुतः हमारे दुःख का कारण बनता है।

देखने की क्रिया पर ही विचार करें। परमात्मा ने हमें नेत्र दिये हैं देखने के लिये। इनकी ज्योति थोड़ी बहुत मंद पड़ती है तो हम चश्मा ले लेते हैं। लेकिन आँख की पुतलियाँ बंद हों तब तो चश्मा नहीं काम कर सकता। लेकिन बहुत से लोगों को पुतलियाँ होती हैं तो भी वे कुछ नहीं देख पाते क्योंकि पुतलियाँ जिससे दृष्टिक्षम होती हैं वह रूप तन्मात्रा की भीतरी शक्ति उनमें कारगर नहीं होती। यह रूप तन्मात्रा हो और पुतलियाँ कार्यक्षम हों तो भी बहुत सी चीजें कभी-कभी आँख के सामने से निकल जाती हैं और हम उन्हें नहीं देख पाते। इसका कारण यह है कि आँख के साथ जब तक मन का योग नहीं होगा न तो रूपतन्मात्रा काम करेगी न पुतलियाँ। किन्तु मन भी स्वतंत्र नहीं है। उसके पीछे भी आत्मा की सत्ता और प्रेरणा काम करती है। आत्मा की शक्ति से मन जागता है। जो बात आँख के लिये यहा कही गई, विचार करने पर स्पष्ट होगा कि वही हमारे समस्त इंद्रिय क्रिया-व्यापारों के लिये सही है। सारे शास्त्र आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता का ही व्याख्यान करते हैं और इसे समझना और जानना कठिन भी नहीं है। कौन नहीं जानता कि आत्मा के बाहर प्रस्थान करते ही सुन्दर से सुन्दर और प्रिय से प्रिय शरीर मिट्टी माना जाता है और उसे हम जल्दी से जल्दी घर से बाहर कर देते हैं। आत्मा की महत्ता हम भलीभाँति जानते हैं किन्तु मानते कितना हैं? शरीर और उसके सम्बन्धों में हमारी आसक्ति इतनी बढ़ जाती है कि हम आत्मा की सत्ता को ही भूल जाते हैं और विचार करें तो पायेंगे कि हमारे दुःखों का मूलकारण यही है।

मानवशरीर को हमारे ऋषियों ने इतना मूल्यवान बतलाया है तो इसका एकमात्र कारण यही है कि इसी शरीर के द्वारा आत्मज्ञान संभव है। मनुष्य के भीतर ही आत्मस्वरूप की जिज्ञासा जगती है और मनुष्य ही इसके लिये प्रयत्न कर सकता है। मनुष्य के इस प्रयत्न में गुरु की कृपा और सहायता ही सफलता का कारण बनती है। इसीलिये हमारे शास्त्रों में गुरु को इतना ऊँचा स्थान और महत्त्व दिया गया है।



<u>विराट के आठवें अंक के लोकार्पण</u>

(गुरुपूर्णिमा २०६४ वि.-दि. २९.७.२००७) के अवसर पर आचार्य महामहोपाध्याय डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी जी का आशीर्वचन

गुरु तत्व है। तत्व में दोष नहीं होता है, दोष व्यक्ति में होता है। गुरु व्यक्ति नहीं अपितु समूह है। गुरु अन्धकार को दूर कर प्रकाश से सम्बन्ध स्थापित कराता है। सम्पूर्ण चराचर जगत चाहे जड़ हो या चेतन, उसमें जो वैशिष्ट्य है वही मुरुता है, वही गुरु है और अन्तःकरण में जिज्ञासा का जो भाव है वही शिष्यता है। सबमें गुरुतत्व है और सबमें शिष्य तत्व है। गुरु शिष्य को गुरुता तक पहुँचा देता है। गुरु आचार्य होता है। आचार्य का अर्थ है जो सभी प्रकार के शुभकर्मों को सम्पादित करता हो।

निर्वाण मोहा जित संग दोषाः
अध्यात्म नित्याः विनवृत्त कामाः।

गुरु सत्संग कराते हैं और सत्संग से तुच्छ कीट भी फूल के संग ईश्वर के मस्तक पर शोभा पाता है। गुरु पारस है तो शिष्य लोहा है। यदि पारस और लोहे के संयोग से सोना नहीं बना तो समझ लेना चाहिये कि या तो पारस नकली है या सोना। ९०% शिष्य शुद्ध लोहा नहीं पाये जाते हैं तो १०% गुरु भी पारस नहीं पाये जाते हैं। अतः गुरु का वरण बहुत सावधानी से करने की आवश्यकता है। गुरु का जीवन खुली किताब के समान होता है। उनका स्वाध्याय, उनकी शिक्षा, उनका आचरण सबके सामने होता है। आचार्य देवोभव! मातृ देवोभव, पितृ देवो भव सब गुरुता के भाव हैं। मान अपमान भूलकर ईश्वर के शरणावलम्ब होकर अपने-अपने कार्यों को कुशलता पूर्वक करें यही हमारा आर्शीवचन है।

प्रस्तुति - सूर्यपाल सिंह

बुद्धिमान बनो!

– स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

कई लोग ऐसे हैं, जो वेद को केवल एकांगी मानते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं, जो कहते हैं कि वेद में केवल लौकिक-विषयों का ही वर्णन है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो कहते है कि वेद में केवल पारलौकिक-विषयों का ही वर्णन है। ऐस लोग जो हैं, वे हमारे वेदों से दूर पड़ गये हैं। वेदों में चार उपवेद हैं। आपने उनका नाम सुना होगा। जरूर सुना होगा और कई का तो उपयोग भी करते होंगे। आयुर्वेद भी एक वेद है। उसको उपवेद बोलते हैं। आयुर्वेद माने हम स्वस्थ कैसे रहें? धनुर्वेद भी एक वेद है। धनुर्वेद माने हम शत्रुओं को कैसे पराजित करें? अथर्ववेद भी एक वेद है। स्थापत्यवेद भी एक वेद है। अर्थ का उपार्जन कैसे होता है? संरक्षण कैसे होता है? वृद्धि कैसे होती है? परस्पर विनिमय कैसे होता है? दाय कैसे प्राप्त होता है? इसको बताने के लिये जो उपवेद है, उसको अथर्ववेद कहते हैं। मकान कैसे बनाना? मशीन कैसे बनाना? यह विद्या जिसमें है, उसको स्थापत्यवेद कहते हैं। आयुर्वेद-धनुर्वेद-अथर्ववेद-स्थापत्यवेद—इतने ही नहीं, एक गान्धर्ववेद भी है। उससे भी आप परिचित होंगे। गाना कैसे? बजाना कैसे? नाचना कैसे? अभिनय कैसे करना? आजकल संस्कृति-संस्कृति के नाम पर जो चीज चलती है न, वह यह है। वेद के तीन भाग परमार्थवेद-लोकवेद-परलोकवेद में-से लोकवेद में-से जो चतुर्थांश है, वह आजकल भारतीय-संस्कृति के नाम प्रचलित है।

वेद में गाने की विद्या है, बजाने की विद्या है, नाचने की विद्या है, अभिनय करने की विद्या है। हाँ! 'भरत' का 'नाट्य-शास्त्र' है। 'शारदातनय' का 'भावप्रकाशन' है। जैसे—यों हाथ करते हैं, तो कुछ भाव प्रकट होता है या नहीं? चेष्टा हुई, तो भाव प्रगट हुआ। आँख ऐसे करते हैं, तो उसमें भी

भाव प्रकट होता है। क्या अभिप्राय हुआ? एक सौ छब्बीस-१२६ प्रकार के भाव केवल आँखों की रचना से प्रकट किये जा सकते हैं। इसका निरूपण भावप्रकाशन में आता है। 'भावप्रकाशन' उस ग्रंथ का नाम है। हम समझते हैं कि अभी संस्कृत को छोड़कर अन्य किसी भाषा में उसका अनुवाद नहीं हुआ है। 'बड़ौदा' की 'ओरियन्टल सोसायटी' (Oriental Society) ने उसका प्रकाशन किया है।

कहने का अभिप्राय यह है कि हमारा जो वैदिक धर्म है, वह केवल बाबाजीओं का धर्म है; केवल जंगल में रहने वालों का धर्म है; केवल निवृत्तिपरायण लोगों का धर्म है—यह भ्रम बिलकुल गलत है। भ्रम तो गलत होता ही है। वेद में गृहस्थ धर्म का भी वर्णन है; ब्रह्मचारी धर्म का भी वर्णन है; वानप्रस्थ धर्म का भी वर्णन है। धर्म का जो एक चतुर्थांश है, वह संन्यासी जीवन है— वह विरक्त जीवन है।

जिनके चित्त में वैराग्य नहीं होता है, वह गृहस्थाश्रम में रहकर बुढ़ापे में अपने घर में कितना दुःख पाते हैं, इसका हमको अनुभव है भला! हमारी एक दादी थीं। दादी अपने हाथ से बना करके खातीं थीं। वह अपने पुरोहित ब्राह्मण के हाथ के सिवाय और स्वयं अपने हाथ के सिवाय किसी दूसरे के हाथ की रोटी नहीं खातीं थीं। जब उनकी पुत्रवधू आयी, तब वह होटल (Hotel) में जाती थी; क्लब (Club) में जाती थी; विदेश में जाती थी; परन्तु माँसादि नहीं खाती थी। जब उनकी पौत्रवधू आयी तब वह अकेले विदेश में जाती है; अंडा भी खाती; माँस भी खाती है; शराब भी पीती है; और नाचती भी है। अभी दादी जिन्दा है। पौत्रवधू कहती है कि यह पिछड़े विचारों की है और दादी कहती है कि यह भ्रष्ट हो गयी है। अब दोनों को एक घर में रहना पड़ता है, एक साथ रहना पड़ता है; एक साथ सारे काम-काज करने पड़ते हैं; और, दोनों के विचारों में पच्चास वर्ष का अन्तर है। काल तो खिसक गया पच्चास वर्ष। दादी वहीं पड़ी रह गयीं और पुत्रवधू पच्चास वर्ष आगे बढ़ गयी। इसका सामंजस्य कहाँ से हो? जीवन में इसकी भी संगति लगानी पड़ती है।

डाक्टर भगवानदास कहते थे— कर्मणा वर्णः वयसा आश्रमः। हमारे सनातन-धर्मी पण्डित कहते हैं—जन्मना वर्णः। कर्मणा आश्रमः। जब मुसलमानों का जमाना आया—खास तौर से और विधर्मियों का जमाना आया, तब

प्रवृत्तिपरायण लोग शास्त्र की रक्षा करने में असमर्थ हो गये। उस समय शास्त्रों की रक्षा और संवर्धन—सारा-का-सारा निवृत्तिपरायण लोगों के हाथ में आ गया। उनकी मनोवृत्ति का प्रभाव मध्यकालीन साहित्य पर बहुत अधिक पड़ गया। लोग इसी को पढ़ते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि आप प्राचीन शास्त्रों को पढ़ते नहीं; वेद पढ़ते नहीं; आरण्यक पढ़ते नहीं; ब्राह्मण पढ़ते नहीं, श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-धर्मसूत्र का स्वाध्याय करते नहीं, धर्मशास्त्रों को पढ़ते नहीं; वाल्मीकि रामायण और महाभारत पढ़ते नहीं; इसलिए, आप लोगों को यह मालूम नहीं पड़ता कि हमारी भारतीय-संस्कृति कैसी सर्वांगपूर्ण है। इसमें धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों की व्यवस्था है। इसमें ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमों की व्यवस्था है।

हमारे सब कामों का मूल—सब सिद्धान्तों का मूल मनुष्य के शरीर में निवास करता है हो! आप धर्म के जिस अंग के सम्बन्ध में विचार करो, हमसे प्रश्न करो। एक दिन एक ने पूछा—सात ऋषि क्यों हैं? अरे भाई! दो आँख, दो कान, दो नाक और एक मुँह—ये सात छिद्र हमारे शरीर के ऊर्ध्व भाग में निवास करते हैं। ये ही ज्ञान के मूल स्रोत हैं। इनका आधिदैविक रूप सप्तर्षि हैं। देखो! बोझ ढोने का काम पाँव करता है कि नहीं? अन्न के पाचन के द्वारा सारे शरीर को रस-रक्त दान करने का काम हमारा मध्य-भाग करता है कि नहीं? कहीं भी मच्छर बैठे अथवा खटमल काटे, तो रक्षा के लिए हाथ दौड़ते हैं कि नहीं? हमारे ज्ञान का उदय सिर में होता है कि नहीं? *ब्रह्मणोऽसि मुखमासीत्। बाहूराजन्यः। कृतदत्तस्यवैश्यः। पद्भ्याम् शूद्रोऽजायत* यही तो समाज रचना है न? समाज-रचना का आधार यन्त्र नहीं होता है। समाज रचना का आधार मनुष्य का शरीर होता है।

महात्माओं ने यंत्र के द्वारा धर्म का निर्णय नहीं किया है। महात्माओं ने अपने शरीर के एक-एक यंत्र को समझ करके उसके द्वारा धर्म के स्वरूप का निर्णय किया है। हृदय के स्वरूप को समझ करके भक्ति का निर्णय किया। फेफड़े को नहीं। कलेजे को नहीं। जिस हार्ट का आपरेशन (Heart Operation) होता है, उसको नहीं। हृदय दूसरी चीज होती है भला! मस्तिष्क में बाहर की वस्तुओं की जो प्रतिक्रियायें होती हैं और उनके द्वारा जो अनुभव इकट्ठा होता है, उस अनुभव का विश्लेषण करके उन्होंने सृष्टि सम्बन्धी विचार किया है। सबका मूलाधार इस पिण्ड में होता है।

बात यह है कि हमारे वैदिक-धर्म में बुद्धि का बहुत बड़ा महत्त्व है। हमारे आध्यात्मिक-शास्त्र में बुद्धि को-विचार को बहुत बड़ा महत्त्व दिया है। बुद्धि प्राप्त होने से क्या होता है और बुद्धि प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए—इन दोनों बातों का निरूपण करने के लिए गीता में एक 'स्थितप्रज्ञ' शब्द का प्रयोग किया गया है। स्थितप्रज्ञ माने जिसकी प्रज्ञा स्थित हो। प्रज्ञा माने ***बुद्धिर्मनीषाधीष्णाधी प्रज्ञाछेमुषी मतिः। 'अमरसिंह' 'बुद्धि'*** शब्द का प्रयोग भी भिन्न-भिन्न अर्थ में करते हैं हो। एक मनीषा होती है। एक धीष्णा होती है। एक धी होती है। एक प्रज्ञा होती है। एक छेमुषी होती है। एक मति होती है। ये सब बुद्धि शब्द के पर्याय हैं, परन्तु, इनमें भी परस्पर बड़ा सूक्ष्म अन्तर होता है।

आओ! प्रज्ञा की बात पर विचार करें। किसकी प्रज्ञा स्थिर होती है और किसी की चंचल? जब मनुष्य अपनी बुद्धि को विचलित रूप में अभिव्यक्त करता है, तब वह समझता नहीं है कि सामाजिक रूप से वह वह अपनी विश्वसनीयता को खो रहा है। मनुष्य समझता नहीं है कि जिस समय वह अपनी बुद्धि के चांचल्य को-अपनी बुद्धि की चपलता को अभिव्यक्ति देता है कि हमारी निष्ठा टूट गयी—हमारी श्रद्धा टूट गयी—हमारी स्थिति टूट गयी, उस समय वह लोगों के चित्त पर से अपनी विश्वसनीयता को उठा देता है। एक चेला हो; उसकी गुरुजी पर कभी श्रद्धा हो और कभी अश्रद्धा, तो क्या गुरुजी उसके ऊपर विश्वास करेंगे? एक ग्राहक कभी कीमत चुका दे और कभी न चुकावे, तो क्या दुकानदार उसके ऊपर विश्वास करेगा? एक दुकानदार कभी अधिक ले और कभी ठीक दाम से दे, तो उस दुकानदार पर क्या ग्राहक का विश्वास होगा? मनुष्य के जीवन में बुद्धि के स्थैर्य का बड़ा भारी महत्त्व है। आखिर यह बुद्धि विचलित क्यों होती है? इसके स्थिर होने का उपाय क्या है? स्थिरता का लक्षण क्या है? स्थिर बुद्धि की पहचान क्या है?

जब हमारे हृदय में संतोष की कमी होती है, तब हमारी बुद्धि विचलित हो जाती है। बुद्धि स्थित कब होती है? मुस्तकिल कब होती है? एक जगह पर स्थिर-दृढ़ कब होती है? बोले—एक तो उसको कामनायें घसीट करके दूसरी जगह न ले जायें और एक अपने मन में इतना क्षोभ न हो। आदमी दूसरे के घर में क्यों जाता है? अच्छा! देखो! एक श्रीमतीजी हैं।

समझो कि वह १० बजे घर से निकलती हैं। पन्द्रह-मिनट उस दुकान में, आधा-घण्टा उस दुकान में, घण्टा-भर उस दुकान में। रिकार्ड (Record) की दुकान में पहुँच गयीं, तो वहाँ घण्टे भर रिकार्ड बजवा कर सुनती रहीं कि हमको खरीदना है। एअर-कण्डीशन (Air-condition) में बैठी रहीं। यह सामान्य लोगों की बात हम कर रहे हैं, परन्तु, बुद्धि को समझने के लिए। एक तो उन्हें— श्रीमतीजी को तरह-तरह के लोगों से मिलने का शौक है; तरह-तरह के दृश्य देखने का शौक है; एयर-कण्डीशन में बैठने का शौक है; और, रिकार्ड सुनने का शौक है। वह शौक उनको घर से निकाल करके ले गया। दूसरी बात क्या हुई? घर में गर्मी है; बैठने की जगह नहीं है; बच्चे ज्यादा कोलाहल करते है; पति से पटती नहीं है; घर में दुःख है; घर में विक्षेप है, इसलिये घर से निकल जाती हैं—यह दूसरी बात हुई।

नारायण! यह हमारी बुद्धि विक्षिप्त क्यों होती है? स्थित क्यों नहीं है? एक जगह क्यों नहीं बैठती? देखो! यदि बाहर का आकर्षण बहुत ज्यादा हो अथवा अपने घर में उद्वेग बहुत ज्यादा हो, तो हमारी बुद्धि स्थिर नहीं होती है।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदुच्यते।।

देखो! इस श्लोक में दोनों ही पहलू बताये गये हैं। एक, जब मनुष्य के मन में कोई तीव्र कामना नही होती है—बाहर का कोई विशेष आकर्षण नहीं होता है, तब उसकी बुद्धि विचलित नहीं होती है। दूसरा, जब अपने घर में आराम होता है, तब मनुष्य की बुद्धि विचलित नहीं होती है। **आत्मन्येवात्मना तुष्टः। आत्मनि एव सन्तुष्टः। आत्मना एव सन्तुष्टः।** अपने में सन्तुष्ट है। अपने से सन्तुष्ट है।

देखो! आप जानते हैं कि केवल जीवन-निर्वाह मात्र या भोजन मिलने से लोग सन्तुष्ट नहीं होते हैं। हाँ! प्रेम करने के लिए दूसरा और जिह्वा को तृप्त करने के लिए दूसरा चाहिए। जिह्वा को तृप्त करने के लिए तरह-तरह का रसीला भोजन चाहिए और कामना की पूर्ति के लिए स्त्री या पुरुष चाहिए। अपने मन को सन्तुष्ट करने के लिए धन चाहिए, जिससे भोजन-मकान-स्त्री और सब चीजें ठीक-ठीक मिल सकें। धन से सन्तुष्टि होती है। भोजनादि से तृप्ति होती है। स्त्री-पुरुष में रति होती है। जब तक सन्तुष्टि-

तृप्ति-रति— ये तीनों चीजें बाहर रखी हुई होती हैं, तब तक बुद्धि स्थिर नहीं होती है। नारायण! जिस मनुष्य के अन्तर में वह सम्पत्ति नहीं है, जिसमें वह रम सके; जिसमें वह तृप्त हो सके; जिसमें वह सन्तुष्ट हो सके, उस मनुष्य की बुद्धि स्थिर नहीं होती है। जिस मनुष्य का भीतर ठनठनपाल है, उस मनुष्य की बुद्धि भीतर नहीं जम सकती है। वह स्थितप्रज्ञ नहीं हो सकता है। आत्म-तुष्टि, आत्म-तृप्ति, आत्म-रति होने से हमारी बुद्धि स्थिर होती है। स्थिर-बुद्धि सत्य को पहचानती है। सत्य बुद्धि में ही काम और उद्वेग के निवारण की अर्थात् बाहर के आकर्षण और भीतर के असन्तोष के निवारण की क्षमता भी होती है।

अब देखो! आपको दूसरी बात बताते हैं। मनुष्य के जीवन में समता का अभ्यास होना चाहिए। समता में बुद्धि स्थिर होती है। यदि बुद्धि स्थिर नहीं करोगे, तो न धर्म होगा, न धन मिलेगा, न परमात्मा मिलेगा, न यथार्थ का-सत्य का साक्षात्कार होगा। अन्धकार में ही भटकते रहोगे। जो अन्धकार में भटक रहा है, उसको क्या सुख है? उसको कहाँ शान्ति है? वह कल्पना कर ले कि अँधेरे में हमारी प्रियाजी सामने हैं। अन्धेरे में कल्पना ही तो करता है। वह प्रियाजी नहीं हो सकती है। डाइन भी हो सकती है। जब तुम अन्धकार में ही कल्पना करते हो, तब वह चुड़ैल भी हो सकती है। जैसे लोग ख्याल करते हैं कि सट्टे में—जुए में—लाटरी में हमको इतना धन आ जायेगा, तो वह अन्धकार में ही तो कल्पना करते हैं न! धन नहीं भी आ सकता है। अन्धकार में अस्तिपक्ष और नास्तिपक्ष—दोनों ही रहता है। इसलिए, वहाँ सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। बुद्धि में समत्व की वृत्ति चाहिए।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

जीवन में दुःख के निमित्त आते हैं। अब तक हजारों दुःख आये और चले गये। क्या आपको दुःखों को स्मरण नहीं आता है? जिस समय वे आये थे, आप व्याकुल हो गये थे—घबड़ा गये थे। आप समझते थे कि अब हम जिन्दा नहीं रहेंगे; लेकिन, वे चले गये और उनकी याद करके आप बहादुरी की ढींग हाँकते हैं। मैंने ऐसे दुःख सहे हैं; मैंने ऐसी बीमारी पार की है; मैंने ऐसे दुश्मनों का सामना किया है; मैंने ऐसी तकलीफ से अपने दिन बिताये

हैं। इत्यादि-इत्यादि। अब इस बात की याद करके लोगों को सुनाते हैं कि मैं कितना बहादुर हूँ? हाँ! जब आप दुःख का सामना करते हैं, जब आप कष्ट का सामना करते हैं, तब आपके जीवन के लिए एक बहादुरी का संस्मरण बनता है। आप अभी से ख्याल कीजिए। अभी से *दुःखेष्वनुद्विग्नमनः।*

जब हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की लड़ाई हुई थी, तब यहाँ सैनिक आये थे। हम बॉम्बे-हॉस्पिटल (Bombay-Hospital) में कई दिन गये। हम सैनिकों के पास बैठते थे—उनसे बात करते थे। एक सैनिक का पेट कट गया था और पाँव टूट गया था। वह टैंक (Tank) में घुस गया था और निकल आया था। उसने अकेले पाकिस्तान के तीन-चार टैंक बिगाड़े थे। हमने उस सैनिक को बताया कि- 'जब तुम अच्छे होकर जाओगे और अपने मित्रों में चर्चा करोगे कि मैंने कैसी-कैसी बहादुरी की; कैसे-कैसे चोट लगी; कितनी-कितनी पीड़ा सही; इत्यादि-इत्यादि, तो तुमको बड़ा सुख मिलेगा।' जिस समय हमने उसको यह बात बतायी, उस समय तो सामान्य रूप से कही। जब वह अच्छा होकर के घर गया, तब वहाँ से उसने चिट्ठी लिखी कि- 'आपने मुझे बहुत बढ़िया बात बतायी थी। सचमुच में, अब मुझे अपनी बहादुरी की बातें सुनाने में बहुत आनन्द आता है।'

सबके जीवन में दुःख आते हैं। ऐसा कोई नहीं होता, जिसमें दुःख न आवे। असल में, वह जीवन ही नहीं है, जिसमें दुःख का सामना न हो। आप दुःख को देखकर के डरिये मत, हटिये मत। अपने मन को उद्विग्न मत होने दीजिए। दुःख को सह लेना, दुःख का सामना कर लेना, दुःख में अपने मन को अक्षुब्ध रख लेना—यह बड़ी बहादुरी का काम है। यदि बुद्धि दुःख से व्याकुल होकर गलत रास्ते पर चली जाये और दुःख देने वाले के समान हो जाये, तो उस बुद्धि में कोई महत्त्व नहीं है। ऐसे सुख भी आते हैं। आप फँसना नहीं। वह चले जायेंगे।

आपको दुःख न आवे, इसकी प्रक्रिया है हो। आप दुःख को स्वीकार मत करो—यह इसकी विद्या है भला! केवल धन कमाने की विद्या नहीं होती है। दुःख से बचने की विद्या होती है। हाँ! आपने सीखी है कि नहीं सीखी है? अगर नहीं सीखी है, तो आप चाहे जितना धन कमाओ और चाहे जितना भोग करो, आप दुःख से बँधते रहोगे—दबते रहोगे। दुःख से बचने

की विद्या होती है।

हमलोग जगन्नाथपुरी में समुद्र स्नान करने गये। वहाँ के जो मल्लाह थे—मछुए थे, उन्होंने हमको बताया कि जब समुद्र की लहर आवेगी, तब उससे किस तरह बचना? या तो सिर नीचे करके नीचे बैठ जाओ और चाहे तो ऊपर छलक जाओ। यह लहर आपको उठा लेगी। कोई तकलीफ नहीं होगी। यदि इसके सामने पड़कर भिड़ोगे, तो यह आपको धरती में पटक देगी और शरीर छिल जायेगा। जैसे समुद्र में स्नान करने की विद्या होती है, वैसे दुःख से बचने की एक विद्या होती है भला!

दुःख के तीन हिस्से होते हैं। दुःख के निमित्त बाहर होते हैं। वह हमारे हृदय में नहीं होते हैं। दुःखाकार वृत्ति हमारे हृदय में होती है। मैं दुःखी हूँ—यह अभिमान होता है। तीन हिस्से होते है हो! पैसा चला गया-यह दुःख का निमित्त है। मन में दुःखाकार वृत्ति हो गयी—यह वृत्ति है। मैं दुःखी हो गया—यह अभिमान है।

नारायण! आपको यह बात सुनाते हैं कि ऐसा हो सकता है कि आपके जीवन में दुःखका निमित्त आवे। रुपया चला जा सकता है। आपका बन्धु-वियोग हो सकता है। शरीर में रोग हो सकता है। उसके कारण आपके मन में दुःखाकार वृत्ति भी उदय हो सकती है। यह तो कर्म की प्रतिक्रिया है। इससे इन्द्रियवान् पुरुष बच नहीं सकता है। परन्तु, मैं दुःखी हूँ—यह अभिमान न तो निमित्त है और न ही कर्म की प्रतिक्रिया है। यह बिलकुल भ्रम है। एक मानी हुई—गढ़ी हुई प्रक्रिया से हम यह बात मान बैठते हैं कि मैं दुःखी हूँ। मैं दुःखी हूँ—यह प्रारब्ध नहीं है। मैं दुःखी हूँ—यह भ्रम है। यह बुद्धि की भूल है यह नासमझी है। इससे बचाने के लिए बुद्धि होती है हो। जिसको स्थितप्रज्ञता प्राप्त हो जाती है, वह इस दुःख से बच जाता है।

आपके जीवन में सुख आवे। आप उस सुख को अकेले लेने की कोशिश मत कीजिए। केवल अपने परिवार के लिए मत रखिए। उसको बाँटते जाइये। यदि आप सुख को बाँटते जायेंगे, तो वह बढ़ेगा। यदि उसको सीमित क्षेत्र में लेने की कोशिश करेंगे, तो वह आपके लिए फोड़े का काम करेगा। आपका दिल पक जायेगा-फट जायेगा।

बुद्धि को स्थिर के रखने के लिए—शुद्ध रखने के लिए यह आवश्यक है कि आप भविष्य की बात सोच कर भयभीत न हों। भविष्य के

बारे में बिलकुल निर्भय रहें। वर्तमान में कोई सुख आ जाये, तो उससे राग न कर बैठें। जो आपके सुख में विघ्न-बाधा डाले, उसके लिए आप दिल को बिगाड़ न लें। जो आपको सुख दे, उसकी मुहब्बत में फँस न जायें। जो आपको दुःख दे, उसके प्रति आप अपने हृदय में आग न जला लें।

जब कोई मनुष्य चलता है, तब यदि उसका पाँव आगे फिसल गया, तो वह गिरेगा। उसका पाँव पीछे फिसल गया, तो वह गिरेगा। यदि उसका पाँव दलदल में गड़ गया, तो उसका चलना ही बन्द हो जायेगा। वह मर जायेगा। ऐसे ही जिस मनुष्य की बुद्धि बीती हुई बातों की याद में मग्न रहती है, उसको भूत लग गया। जो वर्तमान में फँस गया, वह मोह के दलदल में फँस गया। बुद्धि को ठीक रखने के लिए 'वीतरागभयक्रोध' होना पड़ता है।

ठीक बुद्धि वाले मनुष्य की यह पहचान है कि वह राग-भय-क्रोध के अन्दर नहीं फँसता है। स्थिरबुद्धि ही परमार्थ को प्राप्त कराती है। जब आप मरकर स्वर्ग में जायेंगे, तब वहाँ कोई देवी-देवता-आचार्य-गुरु-फकीर आपकी सिफारिश करेगा और ईश्वर आपको माफ करेगा, ऐसी बात नहीं है। आपकी वर्तमान बुद्धि ही आपको सबसे बड़ा सुख उपलब्ध करा सकती है। हाँ! आपकी वर्तमान स्थितबुद्धि ही आपको परमार्थ सत्य और ब्रह्म का साक्षात्कार करा सकती है।

नारायण! आपको स्मरण होगा। आपको सुनाया था कि बुद्धियोग ही मनुष्य को कर्मविक्षेप से बचा सकता है। अपने द्वारा फैलाये हुए जाल में मनुष्य स्वयं न बँध जाये, इसके लिए बुद्धि चाहिए। यह कर्म तो अपने द्वारा फैलाया हुआ जाल है। जैसे रेशम का कीड़ा अपने चारों ओर रेशम का जाल बुनकर के अपने को कैद कर लेता है, वैसे ही मनुष्य अपने चारों ओर कर्म का जाल बुन करके अपने आपको कैद कर लेता है। कर्म विक्षेप से मुक्ति प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए? आप बुद्धिमान् बनो, तो कर्मविक्षेप से छूट जाओगे। ***दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धि-योगाद्धनंजय।*** दूसरी बात बतायी कि कर्म करने पर सुख-दुःख आते हैं—फल-विक्षेप होता है। फल-विक्षेप से बचने के लिए भी बुद्धिमान् होने की आवश्यकता है।

अच्छा! फिर आपको यह बात बतायी कि मनुष्य जब कर्म करता है; तब भले वह सुख-दुःख पर ध्यान न दे; परन्तु, मैंने पुण्य किया—मैंने पाप किया—इस सुकृत-दुष्कृत के विक्षेप से अपने आपको ग्रस्त लेता है। मैं पापी

हूँ—यह अभिमान हो जाये, तो स्वयं दीन-हीन-मलिन-म्लान हो जायेगा। मैं पुण्यात्मा हूँ—यह अभिमान हो जाये, तो दूसरों को नीचा समझकर के उनसे घृणा करने लगेगा। स्वयं घृणा का आश्रय हो जायेगा। उसके हृदय में घृणा हो जायेगी। अभिमानी पुरुष प्राय: दूसरों को अपने से नीच समझते हैं और उनसे घृणा करते हैं। नारायण! करने चले थे पुण्य और किया पुण्य का अभिमान; और, दूसरों के प्रति घृणा करके—अपने हृदय में घृणा बसा करके स्वयं नरक में चले गये। पाप-पुण्य के विक्षेप से भी यह बुद्धि ही छुड़ा सकती है। **बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।**

अब यह बात बतायी कि जन्म-मृत्यु के विक्षेप से भी बुद्धिमान् पुरुष छूट सकता है। जन्म-मृत्यु तो शरीर का होता है। यदि बुद्धि आत्मविषया हो जाये—अपने आपको समझ जाये, तो जन्म-मृत्यु के विक्षेप से भी बुद्धि से ही निवृत्त होता है। विद्या से मुक्ति और अविद्या से बन्धन होता है। यह विद्या-अविद्या का विक्षेप भी बुद्धि से ही निवृत्त होता है। जब ब्रह्मात्मैक्य बुद्धि होती है, तब यह निवृत्त हो जाता है।

मनुष्य के हृदय में जिस रीति का विक्षेप हो, उस विक्षेप के निवारण की योग्यता वाली बुद्धि अपने हृदय में पैदा हो जाये, तो मनुष्य का कल्याण हो जाये। भगवान् भी प्रसन्न होते हैं, तो बुद्धि देते हैं। **'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयन्ति ते। बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित: सततं भव। बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो......ब्रह्मभूयाय कल्पते।'** परमात्मा भी बुद्धि से मिले। भक्ति भी बुद्धि से मिले। तत्त्वज्ञान भी वृद्धि से मिले। मनुष्य के जीवन में बुद्धि का होना बहुत आवश्यक है। बुद्धिमान बनो।

◆

- दीर्घ-जीवन से दिव्य-जीवन श्रेष्ठ है।
- जीवन में प्रभु शरणागत होकर जिओ।
- जहाँ से महापुरुष गये हैं वही जीवन का मार्ग है।
- कथामृत जीवन को निष्काम बना देता है।
- जीवन में भजनानंद, ब्रह्मानंद कें आते ही विषयानंद छूट जाता है।
- जीवन में मोह हमारी सारी व्यथा की जड़ है।
- रामकथा सम्पूर्ण विश्व के लिए मार्गदर्शक है।

गुरु-कृपा

- दीनानाथ झुनझुनवाला

हमारे देश में गुरु की तीन परम्परायें हैं। एक शिक्षा गुरु की जो हमें शिक्षित करते हैं। शिक्षा गुरु बदलते रहते हैं, कक्षायें एवं पाठशाला विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय बदलने के कारण। जो विदेश में जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं उनके शिक्षा गुरु विदेशी हो जाते हैं। दूसरे दीक्षा देते हैं। दीक्षा गुरु जीवन में हमेशा एक ही होते हैं। दिवंगत होने पर भी दीक्षा गुरु बदलते नहीं, उनकी व्यवस्थायें एवं सीख बाकी जीवन में हमारा पथ-प्रदर्शन करती हैं। शिक्षा गुरु जहाँ हमें शिक्षित करते हैं, दीक्षा गुरु द्वारा हम संस्कारित होते हैं। शिक्षा गुरु का हमसे ज्यादा शिक्षित होना आवश्यक है लेकिन दीक्षा गुरु का शिक्षित होना आवश्यक नहीं। दीक्षा गुरु का आत्मज्ञानी होना आवश्यक है। आत्मज्ञानी होने के पश्चात् उन्हें शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती, परम ज्ञानी स्वतः हो जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी परम शिक्षित विद्वान एवं तत्वज्ञानी थे। उनके गुरु परमहंस स्वामी रामकृष्ण देव जी थे। शिक्षित नहीं थे लेकिन परम ज्ञानी होने के कारण स्वामी विवेकानन्द जी एवं अन्य सभी की जिज्ञासाओं का उत्तर बड़े सरल ढंग से देते थे। अपनी इष्ट माँ काली का नित्य साक्षात् दर्शन करते थे। ऐसे तत्वज्ञानी, आत्मज्ञानी पहुँचे हुये परम गुरु अपने शिष्यों को दीक्षित करने में सर्व समर्थ होते हैं। ऐसे गुरुओं द्वारा दीक्षित पुरुष जब संस्कारित होते हैं तो अपने संस्कारों की छाप समाज, देश एवं दुनिया में छोड़ जाते हैं। ऐसे संस्कारित पुरुष मरने के बाद भी अमर हो जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी मात्र ३९ वर्ष की अवस्था में दिवंगत हो गये लेकिन उनके विचारों ने आज भी उनको जीवित रखा है। संस्कारित पुरुष दुर्गुणों से रहित होकर सद्‌गुणों का भंडार हो जाता है। देश और दुनिया में ऐसे संस्कारित शिष्यों के कारण गुरुओं का नाम रोशन होता है। भगवान राम के गुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ हुये। राम के कारण गुरु आज भी

जीवित हैं। भगवान कृष्ण के गुरु ऋषि सान्दीपनि थे। भगवान कृष्ण के कारण ऋषि सान्दीपनि भी आज तक जीवित हैं। महाराज शिवाजी के गुरु समर्थ गुरु रामदास जी महाराज थे। जब तक शिवाजी जीवित रहेंगे गुरु रामदास जी हमारे बीच रहेंगे। इसी प्रकार रामचरितमानस के रचयिता तुलसीदास जी थे जिनके गुरु नरहरिदास हुये। अगर तुलसीदास अपनी रचनाओं के कारण आज जीवित न होते तो इतिहास की गहराइयों में उनके गुरु नरहरिदास जी कब के समा गये होते। धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज के गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज भी अपने योग्य शिष्य के कारण जीवित है। कहने का तात्पर्य कि दीक्षा गुरु हमें संस्कार देते हैं। बिना संस्कार के शिक्षा हमें रावण बना देगी। सच्चा गुरु हमारा संशय मिटाता है। गुरु के आदेश एवं उपदेश से शिष्य अपने जीवन को संवारता है। सच्चा गुरु शिष्य के हृदय में ज्ञान का प्रकाश फैलाकर अज्ञान का भंजन करता है और शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति फैलाता है।

एक बनारसी गुरु होते हैं। बनारस में सभी गुरु होते हैं, कोई चेला होता ही नहीं। यहाँ की प्रचलित भाषा है- 'का गुरु हाँ गुरु।' यहाँ आपस में राजा शब्द का भी प्रयोग होता है, का राजा, हाँ राजा। यहाँ कोई प्रजा नहीं होता। आपस में लोग मालिक शब्द का भी प्रयोग करते हैं, का मालिक, हाँ मालिक। यहाँ सभी मालिक हैं, नौकर कोई नहीं। याने न शिष्य हैं, न प्रजा हैं और न नौकर हैं। हो भी क्यों? कारण कहते हैं यहाँ का कंकड़ भी शंकर है। फिर हमारे भगवान राम एवं भगवान कृष्ण जिसका वध करते हैं उसका तारण कर देते हैं। याने जिसका तारण हो जाता है वह मुक्त होकर आवागमन के चक्र से छूट जाता है। लेकिन आदि ब्रह्म भगवान शंकर अजन्मा हैं। अतः अनादि हैं, अनन्त हैं, कालों के भी महाकाल हैं। ये तो जिसका वध करते हैं, उसको अपना स्वरूप ही प्रदान कर देते हैं। 'चिदानन्द रूपं शिवोऽहं शिवोऽहं' याने वह भी शिव स्वरूप हो जाता है। कहते हैं पारस पत्थर भी लोहे को सोना बनाने की सामर्थ्य रखता है लेकिन उसको पारस पत्थर नहीं बना सकता। यह विलक्षण सामर्थ्य केवल हमारे भगवान शंकर में है।

दीक्षा गुरु को हमारे शास्त्रों ने कितना महत्व दिया वह इस प्रचलित मंत्र से हमें ज्ञात होता है। शास्त्र कहते हैं-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्मं तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं बहुत दिनों तक इस मंत्र के मर्म को समझ नहीं पा रहा था। कारण शास्त्रों ने गुरु को हमारे तीनों आदि ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, महेश से ऊपर परम ब्रह्म बता दिया। क्या ऐसा होना संभव है? लेकिन एकबार पूज्य श्री रमेश भाई ओझा जी की व्याख्या सुन रहा था तो उन्होंने इसके अर्थ को सुन्दर ढंग से व्याख्यायित किया।

ब्रह्मा जिस तरह सर्जन करते हैं उसी तरह गुरु जी सच्चे शिष्य का सर्जन करते हैं। विष्णु की तरह गुरुजी शिष्य का लालन-पालन करते हैं। शिष्य के आन्तरिक सत्तत्वों का संवर्धन करते है और शिव की तरह शिष्य के भीतर के दुर्गुणों का संहार करते हैं और शिष्य को सदाचारी बनाते हैं। इस दृष्टि से गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु शिव हैं।

पूज्य श्री मोरारी बापू ने कहा गुरु कमजोर हो सकता है व्यक्ति के रूप में, गुरुपद कमजोर नहीं होता। कैसा भी गुरु हो, गुरु में कमी भी हो लेकिन महत्व गुरुनिष्ठा का है। गुरु ने देखा है या नहीं लेकिन आपको बता देगा और आप पहुँच जायेंगे। जैसे बम्बई का रेल का टिकट देने वाला आवश्यक नहीं कि बम्बई देखा हो।

कुछ लोग गुरु के पास उत्सुकतावश जाते हैं, कुछ श्रद्धा से जाते हैं। लेकिन कुछ लोग शिष्य के भाव से जाते हैं। जो जिस भाव से जाते हैं उनके लिये गुरु की वाणी का असर भी भिन्न-भिन्न होता है। जो शिष्य उत्सुकतावश गुरु के पास आता है उसके लिये गुरु की वाणी संदेश है। जो श्रद्धा के साथ आता है उसके लिये गुरु की वाणी उपदेश है एवं जो शिष्य के भाव से आता है उसके लिये गुरु की वाणी आदेश है। प्रश्न है कि हम गुरु के पास किस भाव से जाते हैं। जिस भाव से जायेंगे उसी के अनुरूप हम ग्रहण करेंगे।

मैं उत्तराखण्ड के बद्रीनाथ धाम पहुँचा। एक महात्मा जी के दर्शनार्थ पहुँचा। मैंने सोचा कोने में मूर्ति रखी है, नजदीक गया तो देखा साक्षात् महात्मा जी बैठे थे। हठयोगी थे, अतः उनके शरीर में कोई गतिशीलता नहीं देखी। मेरे पहुँचने पर महात्मा जी ने पूछा, बच्चा, कहाँ से आया है। मैंने कहा, 'महाराज, काशी से आया हूँ।' बच्चा कोई गुरु किया या नहीं। मैंने कहा अभी नहीं किया है तो महात्मा जी ने कहा, 'बच्चे बिना गुरु के ज्ञान अधूरा रहता है।' मैंने कहा, 'महाराज, गुरु करने के बाद गुरु में कोई कमी दिखाई दे तो गुरु के प्रति शिष्य की निष्ठा में कमी आ जायगी। महाराज जी

ने कहा, बच्चा गाय काली है या पीली, उसके सींग बड़े हैं या छोटे, जानकर क्या क़रोगे। तुम्हें तो गाय के दूध से मतलब है। याने उनका इशारा था तुम्हें तो गुरु के ज्ञान से मतलब है। इसका एक कारण और भी है। हम अज्ञानी लोग गुरु के ज्ञान गाम्भीर्य का आकलन नहीं कर सकते जैसे हाईस्कूल तक पढ़ा व्यक्ति एम.ए. की परीक्षा नहीं ले सकता उसी प्रकार गुरु के प्रति श्रद्धा और विश्वास में कमी मत आने दो। लाभ मिलेगा। आचरण दोष पाये जाने पर श्रद्धा विश्वास में कमी आना निश्चित है।

गुरु अपने शिष्य को विघ्न-बाधा से बचाते हैं। अपने शिष्य के साधना पथ को निष्कंटक बनाते हैं। सद्‌गुरु वही है जो ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न हो अर्थात् जो वेद-शास्त्रों के रहस्य का ज्ञाता हो और जिसने स्वयं साधना सम्पन्न होकर भगवान का साक्षात्कार कर लिया हो। सद्‌गुरु का एक लक्षण यह भी है कि उसे संसार के प्रति राग नहीं रहता। संसार में सद्‌गुरु मिलना मुश्किल है। सद्‌गुरु अपने शिष्यों की शक्ति, प्रवृत्ति आदि को देखकर उनके अनुसार ही मंत्रों का निर्णय करते हैं और उन्हीं से साधकों को लाभ होता है। शिष्य को गुरु के पास जाने की मर्यादा है न कि गुरु को अपने पास बुलाने की।

इस वर्ष गुरु पूर्णिमा १८ जुलाई को पड़ेगी जो आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाता है। गुरु पूर्ण है, अतः गुरु पूर्णिमा को उनकी पूजा का विधान है। गुरु पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा भी कहते हैं। महर्षि वेद-व्यास जी ने हिन्दू समाज को स्वाध्याय के लिये विपुल ग्रंथ समूह सुलभ कराया। यह परम ज्ञानी महर्षि वेद-व्यास जी की पवित्र जयन्ती है। व्यास की रचनाओं में एक लाख श्लोकों की महाभारत को पंचम वेद भी कहा जाता है। महाभारत के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जो विषय महाभारत में वर्णित नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। यह विशाल ग्रंथ हिन्दू समाज का वृहत् विश्वकोष है। व्यास जी वास्तव में अनोखी प्रतिभा के महापुरुष थे। भारत के इतिहास का संकलन भी सर्वप्रथम उन्होंने किया। दुर्लभ वेदों एवं शास्त्रों का अगम्य ज्ञान भागीरथ की गंगा के समान सबको सुलभ कराया। ऐसे महान ज्ञानी विद्वान् का स्मरण भी हम गुरु पूर्णिमा को करते हैं।



विकार मुक्ति

एक प्रवचन पढ़ रहा हूँ। किन्हीं साधु का है। क्रोध छोड़ने को, मोह छोड़ने को, वासनाएँ छोड़ने को कहा है। जैसे ये सब बातें छोड़ने की हों! किसी ने चाहा और छोड़ दिया! पढ़-सुनकर ऐसा ही प्रतीत होता है। इन उपदेशों को सुनकर ज्ञात होता है कि अज्ञान कितना घना है। मनुष्य के मन के संबंध में कितना कम जानते हैं!

एक बच्चे से एक दिन मैंने कहा कि तुम अपनी बीमारी को छोड़ क्यों नहीं देते हो? वह बीमार बच्चा हंसने लगा और बोला कि क्या बीमारा छोड़ना मेरे हाथ में है?

प्रत्येक व्यक्ति विकार और बीमारी को छोड़ना चाहता है, पर विकार की जड़ों तक जाना आवश्यक है; वे जिस अचेतन गर्त से आते हैं, वहाँ तक जाना आवश्यक है- केवल चेतन मन के संकल्प से उनसे मुक्ति नहीं पाई जा सकती है।

एक कहानी फ्रॉयड ने कही है।

एक ग्रामीण शहर के किसी होटल में ठहरा था। रात्रि उसने अपने कमरे में प्रकाश को बुझाने की बहुत कोशिश की पर असफल ही रहा। उसने प्रकाश को फूंककर बुझाना चाहा, बहुत भांति फूंका, पर प्रकाश था कि अकंपित जलता ही गया। उसने सुबह इसकी शिकायत की। शिकायत के उत्तर में उसे ज्ञात हुआ कि वह प्रकाश दीये का नहीं था, जो फूंकने से बुझ जाता- वह प्रकाश तो विद्युत का था। और मैं कहता हूँ कि मनुष्य की विधि गलत है। वे मिट्टी के दीये नहीं हैं; विद्युत के दीये हैं। उन्हें बुझाने की विधि अचेतन में छिपी है। चेतन के सब संकल्प फूंकने की भांति व्यर्थ हैं। केवल अचेतन में योग्य माध्यम से उतरकर ही उनकी जड़ें तोड़ी जा सकती हैं।

(साभार : ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन)

"हिन्दी साहित्य में गुरु का स्वरूप"

- डॉ० मानिक चन्द पाण्डेय

भारतीय संस्कृति में गुरु भौतिक एवं परमार्थिक विधाओं का उपदेश कर अपने शिष्य को सभी प्रकार से सक्षम बनाता रहा है। "गुरु" शब्द में तीन तत्वों का समावेश है- १. ग का अर्थ- अक्षर ज्ञान

२. ऊ अक्षर का- परमात्मा

३. र अक्षर का- अग्निवाचक

अर्थात् शिष्य के हृदय में विद्यमान अंधकार को भस्म करके अपनी ज्ञान रूपी अग्नि से जो प्रकाश फैला दे, उसे ही गुरु कहा जाता है। इसीलिए शास्त्रों में ज्ञान को 'अग्नि' की संज्ञा दी गई है। सामान्य अर्थ में गु-अंधकार का सूचक तथा रु-निकालने वाला, के अर्थ का वाहक है। अर्थात जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाय, उसे गुरु कहते हैं। इसीलिए हमारे यहाँ "असतो मा सद्गमय तथा तमसो मा ज्योर्तिगमय" की परिकल्पना एवं कामना आदिकाल से ही की गई है।

हालांकि गुरु और आचार्य में थोड़ा सा तात्विक अंतर है। आचार्य अपने सान्निध्य में रखकर शिष्य को सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञान कराता है। लेकिन गुरु अपनी आंतरिक तेजस्विता एवं तप से दीक्षा दे कर अज्ञान का हरण तथा ज्ञान का वरण कराता है। गुरु का दायित्व सदियों से यह रहा है कि वह अपने शिष्य का न सिर्फ पथ-प्रदर्शन करे, बल्कि मार्ग में आये विघ्न बाधाओं का निवारण भी करे। लेकिन ऐसा सभी गुरु नहीं कर सकते हैं। इसीलिए शिष्य को योग्य गुरु का सान्निध्य प्राप्त करना चाहिए तभी तो गोरखनाथ कहते हैं कि—

गगन मंडल में ऊधाँ कूवां, तँह अमृत का वासा।
सगुरा होई सो भरि-भरि पीवे, निगुरा जाय पियासा।।

गुरु की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कबीर ने तो अपने ग्रंथ में "गुरुदेव को अंग" करके एक 'तरंग' ही स्थापित किया है और वह कहते हैं कि—

गुरु गोविंद दोनों खड़े काको लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपनो, गोविंद दियो बताय।।

कबीर की दृष्टि यह है कि एक साथ सौ सूर्य भी उदित हो जायँ तो भी अंतर मन में व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार से निजात नहीं दिला सकतें हैं। निजात दिलाने और इस संसार रूपी भवसागर से मुक्ति दिलाने का काम गुरु ही अपने ज्ञान रूपी उपदेश से कर सकते हैं। यही कारण है कि शिष्य गुरु के प्रति नित्य अपने को समर्पित करता है—

बलिहारी गुरु आपणै द्यौहाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तै देवता, करत न लागी वार।।

यदि सच्चे अर्थों में देखा जाय तो इस संसार का कोई भी रिश्ता या नाता स्वार्थ रहित नहीं है, यदि है तो सिर्फ गुरु का। गुरु जैसा इस दुनिया में कोई सगा भी नहीं है—

सतगुरु सवा न को सगा, सोधी सई न दाति।
हरि जी सगा न को हितू, हरिजन सई न जाति।।

आधुनिक युग में दान वीर या दाता का दंभ मारने वाले तो बहुत लोग हैं, लेकिन मनुष्य हैं। लेकिन गुरु ही इस संसार में एक ऐसा दाता है जो शिष्य को तीनों लोकों की संपदा दे देता है और उसके बदले में कुछ इच्छा नहीं करता है।

गुरु समान दाता नहीं, जाचक शिष्य समान।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्ही दान।।

रामभक्ति परम्परा के समर्थ कवि गोस्वामी जी हैं। उनके अनुसार गुरु की गणना लाभ हानि के आधार पर नहीं की जानी चाहिए। जो व्यक्ति ऐसा करता है तो उसका जन्म मेढ़क की योनि में होगा—

हर गुरु निंदंक दादुर होई।

जहाँ एक ओर यह कहा जाता है कि "विन गुरु भवनिधि तरहि न कोई ज्यों विरंचि शंकर सम होई" वहीं सूफीपरम्परा के कवि मलिक मुहम्मद जायसी को बिना गुरु के संसार सूना प्रतीत होता है। वह अपने प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत में स्पष्ट लिखते हैं कि—

गुरु सूवा जेहि पंथ दिखावा।
बिन गुरु जगत को निर्गुन पावा।।

आदिकालीन कवि अमीर खुसरो को तो उनके औलिया मता की दृष्टि में गुरु (प्रियतमा) के अभाव में सारा संसार ही अंधकार युक्त हो गया है—

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारै केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।।

साहित्य के इतर भी गुरु की दीक्षा का महत्व माना जाता है। क्योंकि गुरु की दीक्षा एवं 'दान' के द्वारा चौरासी कोस की वैतरणी नदी को पार किया जा सकता है। इसीलिए कहा भी जाता है कि— "गुरु चरन मिलन बड़े भाग से"। गावों में तो गुरु की विशिष्टता, योग्यता को लेकर एक कहावत ही चल पड़ी है कि— "गुरु केरे छान के, पानी पियै जान के।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विचार की परिपक्वता, निष्ठा की परिपक्वता एवं विश्वास की परिपक्वता का नाम गुरु है। दूसरे शब्दों में कहें तो गुरु वह है जिसे देखकर मन प्रसन्न हो जाय। क्योंकि वह हाड़ मांस का देह मात्र नहीं है, बल्कि गुरु वह पीठ हैं, जिसके द्वारा व्यक्त किया हुआ विचार मानव की परिपक्वता में घूरक होता है। गुरु-शिष्य में यही अंतर है कि जिसे गुरु थोड़ा पहले जान लेता है, उसे शिष्य थोड़ी देर में जान पाता है। अतः गुरु प्राण है और जब तक प्राण रहेगा वे अभ्यंतर में विराजमान रहेंगे।



- जीवन में किसी संत का पदार्पण एक महान उपलब्धि है।
- जीवन के दो मार्ग हैं- किसी को अपना मत मानो या सबको अपना मानो।
- जीवन के उत्तरार्द्ध में देह रूपी मथुरा पर जरासंध आक्रमण करता है।

संकल्प

- श्रीमती किरण त्रिपाठी

संकल्प उसे कहते हैं जब अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हम दृढ़ निश्चयी हो जाते हैं और निश्चय को वास्तविकता में परिवर्तित कर देते हैं। संकल्प से स्वप्न यथार्थ बन जाता है। कल्पना वास्तविक अनुभव बन जाती है। संकल्प की शक्ति कल्पनातीत है। संकल्प वह शक्ति है जिसमें से उपलब्धियों का बीज अंकुरित एवं विकसित होता है।

संकल्पित व्यक्ति अपने समय की बर्बादी नहीं करता। कर्म एवं पुरुषार्थ से वह अपने संकल्प को पूरा करता है।

बिना साहस एवं हिम्मत के संकल्प नहीं होता। साहस एक ऐसा अनूठा गुण है जो सफलता तक पहुँचाने की क्षमता रखता है। एक कवि ने ठीक ही कहा है-

कदम चूम लेती है खुद बढ़ के मंजिल
मुसाफिर अगर अपनी हिम्मत न हारे।

जो व्यक्ति अपने को परिस्थितियों का गुलाम बना लेता है वह कभी संकल्पित नहीं हो सकता। अपने भाग्य के निर्माता आप स्वयं बनो। पुरुषार्थ उसे कहते हैं जब लक्ष्य प्राप्ति के लिये पूरे मनोयोग से व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति एवं सम्पदा से परिश्रम करता है। संकल्पित व्यक्ति वादा करता नहीं, बल्कि निभाता है।

बल स्थूल होता है, संकल्प सूक्ष्म। बल की सत्ता संकल्प पर निर्भर करती है। संकल्प का कोई बाहरी स्वरूप नहीं होता किन्तु रूपाकार तो बल दीखता है।

संकल्प की परख विपत्ति में होती है। मन का संकल्प एवं शरीर का पराक्रम किसी काम में लगा दिया जाय तो सफलता मिलना निश्चित है।

धीरज धरो। न धन से काम होता है, न बल से काम होता है। न नाम से काम होता है न यश से काम होता है वरन् संकल्प ही कठिनाइयों की संगीन दीवारों को तोड़कर अपना रास्ता बना लेता है।

जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है। जिसके पास बुद्धि एवं बल है वही संकल्प कर सकता है।

आर्ट आफ लिविंग के गुरु श्री रवि शंकर जी कहते हैं संकल्प से ही अपनी बुरी आदतों से छुटकारा पा सकते हैं। समय और स्थान को ध्यान में रखकर संकल्प करो। संकल्प समयबद्ध होना चाहिये। फिर तुम्हारा व्यवहार भी अच्छा होगा और तुम पथ से विचलित होने से बच जाओगे।

हमारे देश में आचार्य चाणक्य ने संकल्प लिया। मगध के अत्याचारी राजा नन्द ने ब्रह्म भोज से इस काले-कलूटे कुरूप ब्राह्मण को यह कहकर निकाल दिया कि- "इस चाण्डाल को ब्रह्म भोज में क्यों लाया गया।" वह ब्राह्मण इस अपमान को सहन नहीं कर सका और उसने भोजन छोड़कर तत्काल अपनी शिखा खोलते हुये यह प्रतिज्ञा की- "जब तक मैं इस नंद वंश को समूल नष्ट करके अपने अपमान का बदला नहीं ले लूंगा, तब तक शिखा नहीं बाधूँगा।" ऐसी गर्जना करता हुआ वह ब्राह्मण ब्रह्मभोज से उठकर चला गया।

इस ब्राह्मण चाणक्य ने नंद के पुत्र चन्द्रगुप्त को तैयार किया। उसे राजनीति की शिक्ष दी एवं युद्ध-कौर्शल मुख्य सैनिक कमाण्डर शकटार ने सिखाया। चन्द्रगुप्त ने नंद को कैद कर लिया और उसे एक कैदी के रूप में चाणक्य के सामने उपस्थित किया। चाणक्य ने अपनी तलवार से नंद क़ा गला काट दिया और अपनी शिखा बांध ली। इस प्रकार चाणक्य ने अपना संकल्प पूरा किया।

नेपोलियन बोनापार्ट के बारे में कहा जाता है कि वह भी संकल्प का धनी था। वह तो कहा करता था कि असंभव शब्द केवल शब्दकोष में होता है। कोई काम असंभव नहीं होता। नेपोलियन को आलप्स पर्वत पार करना था। पर्वत के नीचे बैठी बूढ़ी औरत से नेपोलियन ने पूछा- 'माँ, मैं इस पर्वत को पार करना चाहता हूँ।' तो बूढ़ी औरत ने कहा- 'तू पार नहीं कर सकेगा।'

पूछा क्यों, तो बोली- 'आज तक कोई पार नहीं कर सका।' तो नेपोलियन ने कहा- 'मैं तो पार करके रहूँगा।' उसी बूढ़ी औरत ने फिर कहा- 'तू पार हो जायगा।' नेपोलियन ने पूछा कि- 'माँ, अभी तो तू कह रही थी कि पार नहीं कर सकेगा अब कह रही है कि पार हो जायगा।' बूढ़ी माँ ने कहा बेटा अभी तक किसी ने नहीं कहा कि मैं तो पार करके रहूँगा। तू पहला व्यक्ति है जिसने कहा— पार करके रहूँगा। जो पार करने का संकल्प कर लेगा वह तो पार हो तो जायगा' और नेपोलियन ने वह आलप्स पर्वत पार कर लिया। यह है संकल्प शक्ति का कमाल।

संकल्प लिया था महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने। गुलाम देश में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना करने का संकल्प और वह भी एक अकिंचन ब्राह्मण द्वारा। पहले उन्होंने महाराजा बनारस से भूमि माँगी और उसके बाद उस समय के सभी राजा-महाराजाओं एवं धनी परिवारों से सम्पर्क किया। जहाँ गये वहाँ से विश्वविद्यालय के लिये कुछ लेकर आये। अपने मान-अपमान का कोई ख्याल नहीं किया। केवल पैसा लाना ही महत्वपूर्ण नहीं था। सारे विश्व में विश्वविद्यालय का भव्य स्वरूप देखना हो तो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को देखें। उस समय के विशिष्टतम विद्वानों को इस विश्वविद्यालय में लाने का श्रेय भी मालवीय जी महाराज को था। महान दार्शनिक डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन को उन्होंने ही कुलपति पद पर आसीन किया। इस विश्वविद्यालय ने मालवीय जी महाराज को मरणोपरान्त भी अमर कर दिया। उनकी अमर कृति आज भी विद्यमान है। यहाँ से अब तक लाखों अशिक्षित शिक्षित होकर निकले हैं और सारे देश दुनिया में फैले हैं। इस विश्वविद्यालय में स्थित सर सुन्दर लाल अस्पताल ने भी लाखों रोगियों को रोगमुक्त किया। मालवीय जी महाराज का यह शिक्षा मंदिर हमें भी संकल्पित होने की प्रेरणा देता है।

संकल्पित व्यक्ति अपनी मानसिकता को कर्म प्रधान बनाता है। लक्ष्य निर्धारित करके पूरे मनोयोग से उसमें जुट जाता है। हार से पैदा हुई हताशा को उत्साह का दुश्मन मानकर वह इसे पास नहीं फटकने देता। शार्टकट से कोई काम नहीं करता। शार्टकट मजबूरी हो सकती है, सफल होने का सही रास्ता नहीं।

गीता प्रेस के संस्थापक श्री जयदयाल जी गोयंदका ने कहा है कि

लक्ष्य बनाकर संकल्पित होकर चलने वाला व्यक्ति निश्चित ही देर-सबेर लक्ष्य तक पहुँचता है।

स्वामी भजनानन्द सरस्वती जी ने कहा कि संकल्पित व्यक्ति ही कर्तव्य कर्म का पालन कर सकता है। कर्तव्य कर्म का पालन ही धर्म है।

संकल्पित व्यक्ति चिंता नहीं करता, चिंतन करता है। चिंता नकारात्मक है तो चिंतन सकारात्मक। चिंता भय से उपजती है और चिंतन हमारी सोच को रचनात्मक बनाता है। चिंतन से ही चिंता को दूर किया जा सकता है। चिन्ता से हमारी ऊर्जा नष्ट होती है, जब कि चिंतन से स्वस्थ दृष्टिकोण होता है कि वर्तमान में जियें और भविष्य की व्यर्थ की चिंता से दूर रहे।

चाहत शुभ होने के साथ इसे संकल्प से जुड़ा होना चाहिए। संकल्प, चाहत में ऐसी ऊर्जा भर देता है कि वह अपने लक्ष्य तक पहुँच कर ही ठहरती है। चाहत सदा अपनी निजी सामर्थ्य एवं योग्यता के अनुरूप होनी चाहिये। यह हमारी पहुँच की सीमा में हो। परिस्थिति के साथ इच्छाओं का सामंजस्य सफलता का रहस्य है। सफल एवं गरिमायुक्त व्यक्तित्व के निर्माण में श्रेष्ठ कामनाओं का अपार योगदान है। हमारा जीवन सदैव शुभ संकल्पों से भरा होना चाहिये।

संकल्प सूक्ष्म होते हुए भी उपलब्धियाँ महान हो सकती हैं। उपनिषद में ऋषि अपने शिष्य को पीपल के बीज के दो भाग करने को कहते हैं और पूछते है- 'तुम्हें क्या दीखता है?' शिष्य बोला- 'कुछ नहीं।' तब गुरु बोले- 'इस लघु बीज में से विशाल वृक्ष का विकास होता है। बीज वृक्ष का हेतु है। हेतु सूक्ष्म होते हुये भी परिणाम अविश्वसनीय रूप से बृहत् हो सकता है। यह दृश्य जगत अदृश्य दिव्य संकल्प की परिणति है।'

मन किसी वस्तु की इच्छा करता है, बुद्धि उसे आकार प्रदान करती है और संकल्प उसे कार्यान्वित करता है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं- 'ऐसा कभी न कहना कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम अनन्त स्वरूप हो, तुम्हारी जो इच्छा होगी वही कर सकते हो, तुम सर्वशक्तिमान हो।'

संकल्प दो प्रकार के होते हैं। एक स्वार्थजन्य अहं केन्द्रित होता है। इसे आसुरी संकल्प कहते हैं। दूसरा परमार्थी संकल्प होता है उसे दैवी संकल्प कहते हैं। भगवद्गीता आसुरी संकल्प को काम संकल्प कहती है अर्थात्

स्वार्थ और इन्द्रिय कामनाओं से उत्पन्न संकल्प। गीता के अनुसार काम संकल्प का पूर्णतया त्याग करना चाहिये क्योंकि इससे मनुष्य निश्चित रूप से बंधन में फँसता है, कष्ट पाता है और उसका नाश हो जाता है। गीता के अनुसार कामना के संकल्प से रहित होकर कर्म करना चाहिये। जब आप लोक संग्रह के लिये कर्म करते हैं तो आपका कार्य प्रभु कार्य बन जाता है और आप दैवी इच्छा से जुड़ जाते हें। इसमें काम संकल्प का दोष नहीं होता है। दैवी संकल्प का गीता भी समर्थन करती है।

'लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु' का संकल्प हमारे देश के महान ऋषि करते हैं और यही ऋषिवाणी हमारे महान आंदोलनों का प्रेरक तत्व रही है।

हम कोई भी धार्मिक अनुष्ठान करने के पूर्व संकल्प लेते हैं। उस संकल्प में उस अनुष्ठान का हेतु निहित रहता है। पूर्व में राजाओं द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ भी बिना संकल्प के सम्पन्न नहीं होता था। इस संकल्प के पीछे विजयश्री की कामना होती थी। इस प्रकार संकल्प किसी महान कार्य हेतु सामुहिक प्रयास या वचनबद्धता है।

हमारे देश में बलिदानी स्वतंत्रता सेनानी मातृभूमि की सेवा का संकल्प लेते थे और उसे गुलामी की बेड़ी से मुक्त कराने में अपना जीवन भी समर्पित कर देते थे।

संकल्प का काम विकल्प से नहीं होता। विकल्प माने काम को टालने की प्रवृत्ति। संकल्प विकल्प के अलावा एक निर्विकल्प अवस्था होती है। यह सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि है। ऐसी अवस्था में आदमी संकल्प विकल्प के परे चला जाता है और आत्मानन्द के क्षेत्र में पहुँच जाता है।



- भावना और विचार में संतुलन कायम करो तभी जीवन स्वस्थ होगा।
- जिनके जीवन में उत्साह है उनको कुछ भी दुर्लभ नहीं।
- जीवन में सहजता, सरलता और सजगता होनी चाहिए।
- जब तक जीवन में कामराज्य है तब तक आप शान्ति की कामना नहीं कर सकते।

वृद्धावस्था में जिन्दगी को सुखद एवं समृद्ध बनाने के सूत्र

- दीनानाथ झुनझुनवाला

वृद्धावस्था की कोई उम्र निश्चित नहीं है। किसी धर्मशास्त्र या चिकित्सा शास्त्र में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि इस उम्र के बाद आदमी वृद्ध हो गया। मैंने पच्चासी वर्ष के जवान को देखा है एवं पच्चीस वर्ष के वृद्ध को देखा है। पच्चासी वर्ष का जवान वह है जो हमेशा उत्साह, उमंग एवं प्रसन्नतापूर्वक रहता है, अपने को वृद्ध नहीं मानता, अपने स्वास्थ्य का पूरा ख्याल रखता है, हाथ उठाकर प्रभु से प्रार्थना नहीं करता कि प्रभो! हमको उठा लो। ऐसे व्यक्ति का जीवन उसके लिये भार-स्वरूप नहीं होता, वह अपना काम स्वयं अपने हाथों से कर लेता है। ठीक इसके विपरीत पच्चीस वर्ष का वृद्ध वह है जो हमेशा उदास, हताश, निराश रहता है। जीवन में कोई उत्साह, उमंग, हँसी खुशी नहीं है। बुद्धि भी निश्चयात्मक नहीं है, हमेशा संशय में रहता है, उसके समझ में नहीं आता कि क्या करें, कैसे करें। ऐसे व्यक्ति का जीवन जब भार स्वरूप हो जायगा तो उसके जीवन जीने का उत्साह एवं उमंग भी समाप्त हो जायगा। कहने का तात्पर्य कि वृद्ध वह है जो अपने को वृद्ध मान लेता है।

हमलोगों ने एक गलत मान्यता और पाल रखी है कि आयु तो निश्चित है, अतः खूब मौज मजे करो। यह धारणा मूलतः गलत है। किसी की आयु निश्चित नहीं है। आप स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके याने प्रातः भ्रमण, योगाभ्यास, खान-पान में नियंत्रण और विचारों में संयम द्वारा आयु बढ़ा सकते हैं एवं राग द्वेष से ग्रसित विचार, अभक्ष्य एवं अनावश्यक

चीजों के भक्षण से अपनी आयु घटा सकते हैं। अतः भूलकर भी इस मान्यता को न पालें कि आयु निश्चित है। हमारी आयु हमारे अच्छे-बुरे आचार-विचार पर निर्भर करती है। हमारे जीवन जीने की लाइफ-स्टाइल क्या है उस पर आयु निर्भर करती है। हमारा देश जब १९४७ में स्वतंत्र हुआ तो उस समय हमारे देश की औसत आयु ३६ वर्ष की थी जो गत साठ वर्षों में बढ़कर साठ वर्ष हो गई। यह स्थिति तब आई जब हमारे देश की आबादी बढ़कर ३५ से १०५ करोड़ हो गई। याने आबादी में तीन गुनी वृद्धि हुई। इसका एकमात्र कारण स्त्री तथा पुरुष में स्वस्थ रहने के प्रति चेतना जागृत हो जाना है। साथ ही चिकित्सकीय सुविधाओं में भी वृद्धि हो गई। इसलिये आयु निश्चित है वाली गलत धारणा को कभी स्वीकार न करें।

हमारे परिवारों में अविभक्त रूप से साथ रहने की परम्परा है। तीन-तीन चार-चार पीढ़ियाँ साथ रहती हैं। अभी भी ऐसे परिवार देखने को मिल जायेंगे। विदेशों से एकदम भिन्न हमारी सामाजिक व्यवस्था है। विदेशों में आप इंग्लैण्ड, अमेरिका जाएँ तो देखेंगे कि लड़का-लड़की वहाँ १५-१६ वर्ष की उम्र के हुए कि माता-पिता से अलग होकर अपनी स्वतंत्र जिन्दगी जीते हैं। अपना कमाते खाते हैं, अलग रहते हैं एवं लड़का-लड़की के साथ घूमने-फिरने की सामाजिक व्यवस्था है। कोई लड़का बिना लड़की के एवं कोई लड़की बिना लड़के के देखने को नहीं मिलेगी। माता-पिता के सामने आते हैं तो उस लड़की को साथ लेकर आने में संकोच नहीं, माता-पिता के सामने सिगरेट शराब पीने से भी कोई परहेज नहीं। हम विदेशी मान्यताओं का यहाँ विचार नहीं करेंगे। केवल उल्लेख इसलिये कर दिया कि हमारी प्राचीन परम्पराएँ भी विदेश के तौर तरीकों से प्रभावित होने लग गईं और नतीजा हुआ कि लड़की तो आपकी लड़की विवाह के बाद भी आजीवन बनी रहेगी लेकिन लड़का विवाह के बाद माता-पिता का नहीं रह जाता, वह पत्नी एवं अपने बच्चों का हो जाता है। लड़की पराये घर चली गई, लड़का अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ अलग रहने लग गया और माता-पिता अकेले रहने को विवश हो गये। विदेशों में वृद्धजनों के लिये पूरी सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था है जैसे उनको चिकित्सा सुविधा आजीवन मुफ्त मिल जाती है, खाने-पीने रहने की कोई दिक्कत नहीं होती। बच्चों का अलग होना उन्हें नहीं अखरता कारण वह १५-१६ वर्ष की आयु से ही अलग रहने

लग गया। वहाँ का वृद्ध अपने परिवार से अलग होकर भी सुखद जीवन जी लेता है। यही कारण है वहाँ की औसत आयु भी अस्सी वर्ष है याने हमारे देश की औसत आयु से भी बीस वर्ष अधिक है। हमारे देश में माता-पिता जब वृद्धावस्था में अपने बच्चों से अलग-अलग हो जाते हैं तो उनका जीवन कष्टकारक हो जाता है। अन्य परिवारों की कई पीढ़ियों को साथ रहते देखते हैं तो और भी कष्ट सताता है कि हम क्यों नहीं अपने परिवार को बांध कर साथ रख सके।

अगर आप विश्लेषण करें कि पहले कई पीढ़ियाँ साथ रहती थीं अब परिवारों में टूटन बढ़ गई। इसके पीछे कारण क्या है? पहले वैज्ञानिक उपलब्धियाँ बहुत धीमी थीं जिसके कारण वृद्धों एवं बच्चों के सोच में ज्यादा अन्तर नहीं आता था। अब इतनी तेजी से वैज्ञानिक उपलब्धियाँ बढ़ रही है कि बच्चों एवं वृद्धजनों के सोच में बड़ा अन्तर आ गया। आजकल हर पीढ़ी पहले से ज्यादा चतुर एवं बुद्धिमान हो रही है। अतः दोनों तीनों पीढ़ियों के सोच में अन्तर आ गया। फिर बच्चों को आप पढ़ने के लिए घर से बाहर बड़े शहरों में भेज देते हैं या विदेशों में भेज देते हैं। वहाँ के वातावरण में पढ़ने-लिखने के कारण घर के बड़े बुजुर्गों के प्रति ममता मोह में भी कमी आ जाती है। विचारों में अन्तर एवं मोह ममता में कमी के कारण परिवारों में टूटन बढ़ रही है।

हमारे देश में वृद्धावस्था सुरक्षित नहीं है। कोई चिकित्सा-सुविधा निःशुल्क नहीं है। कही खाने-पीने की व्यवस्था नहीं है। अगर बूढ़ा-बूढ़ी एक के मरने के बाद अकेले हो जाते हैं तो अकेले जीवन जीना इतना कठिन हो जाता है कि उसे नारकीय कष्ट की अनुभूति होने लगती है। ऐसे में यह जानना आवश्यक हो गया कि क्या वर्तमान में भी तीनों चारों पीढ़ियाँ पूर्ववत् साथ रह सकती हैं या माता-पिता अपने किसी एक पुत्र के साथ अपना जीवन निर्वाह कर सकते हैं। हमारी सामाजिक व्यवस्था केवल माता-पिता के जीवन काल तक सेवा करने की नहीं है, माता-पिता के मरने पर उन्हें पिण्डदान देना तथा मरणोपरान्त प्रति वर्ष उनका श्राद्ध करने को भी विवश करती है। अब हमें यह देखना है कि क्या कई पीढ़ियों के साथ रहने में केवल बच्चों का ही दोष है या बड़े-बुजुर्गों को भी अपनी दिनचर्या एवं सोच में परिवर्तन लाना होगा। बुजुर्गों को दूसरों को नहीं सुधार सकते तो

स्वयं सुधरने के सिद्धान्त को मानना होगा। बुजुर्गों को अपने चिंतन एवं रहने के तौर-तरीके में जो परिवर्तन लाना होगा, उनकी आगे चर्चा करेंगे। ये जो विचार दिये जा रहे हैं वे केवल मेरे विचार नहीं है, हमारे देश के ऐसे संत-महात्माओं के हैं जिनका हमारे समाज के बीच बराबर रहना होता है। मैंने स्वयं भी गरीब-अमीर परिवारों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है और आगे का निष्कर्ष उसी का निचोड़ है। ये सूत्र केवल बुजुर्गों के लिये हैं अत: कहीं बुजुर्ग का उल्लेख न हो तो भी उनको बुजुर्गों के लिये ही मान कर चलें।

बुजुर्ग जीवन को किश्तों में जीना बन्द करें। जवानी में बचपना न छोड़ें और वृद्धावस्था में बचपना एवं जवानी भी बरकरार रहे। जवानी बचपन के शव पर न खड़ी रहे और वृद्धावस्था में जवानी को न मरने दें। ऊपर की ईंट तभी टिकेगी जब नीचे की ईंट रहेगी। यह समग्रता में जीना है, अखण्ड जीवन जीना है। ऐसे ही अखण्ड जीवन जीने वाले व्यक्ति का जीवन अनुभवों से भरपूर होगा। समझदारी बढ़ेगी एवं जीवन भी सुखद एवं समृद्ध होगा। सच मानें, बचपन की निर्मलता एवं निर्दोषता, जवानी का बुद्धि एवं बल से सम्पन्न जोश लेकर जब वृद्धावस्था में प्रवेश करेंगे तो ही वृद्धावस्था में अखण्ड जीवन जीने का आनन्द आयगा। ऐसे अखण्ड जीवन जीने वाले व्यक्ति का होश भी बना रहेगा। ऐसा व्यक्ति ही ज्ञान वृद्ध कहलाने का अधिकारी है। वृद्ध व्यक्ति मार्गदर्शन कर सकेगा, जीवन का संशय मिटेगा, बुद्धि निश्चयात्मक हो जाएगी, राग द्वेष में कमी आ जाएगी और वृद्धावस्थ जीवन की सबसे सुखद एवं समृद्ध अवस्था हो जाएगी। प्रकृति भी हमारा साथ देती है। हमारें बाल भी काले से सफेद हो जाते हैं याने जीवन का करखा (कालापन) छूटने लगता है और सफेदी आने लगती है। हमारे यहाँ सफेदी को स्वच्छता का पर्याय माना गया है। हमारा अखण्ड जीवन शुभ संकल्पों से भरता जायगा। वृद्धावस्था के कारण शरीर भले ही शिथिल हो जाय लेकिन उत्साह एवं जोश में कमी नहीं आएगी। आप चुनौतीपूर्ण कार्य स्वीकार कर सकेंगे, भले ही सार्वजनिक सेवा ही क्यों न हो।

दूसरा सूत्र है अपने शरीर को रोगमुक्त रखने का प्रयास करना। अपने जीवन को दिनचर्या में ढाल लें। आपका दिनचर्या-पालन ही आलस्य का दुश्मन है। रोगमुक्त रहने के लिये नियमित प्रात: भ्रमण एवं योगाभ्यास करें। खान-पान पर नियंत्रण रखें। आचार-विचार को शुद्ध रखें एवं अनावश्यक

एवं स्वास्थ्य के लिये प्रतिकूल पदार्थों के सेवन से परहेज करें। जैसे पान, पान-मसाला, सुर्ती; सुपाड़ी, खैनी, बीड़ी, सिगरेट, शराब, भांग आदि अनावश्यक हैं। आप विश्वास मानें, अपनी आवश्यकताओं को जितना घटाते चले जायेंगे उसी अनुपात में जीवन में शान्ति-संतोष की मात्रा बढ़ती जायगी। जिस दिन आपकी आवश्यकता शून्य हो जाएगी उसी दिन आपको अखण्ड आनन्द की अनुभूति हो जाएगी। आप रोगमुक्त रहने के लिये प्रयासरत रहें तो मृत्यु भी न तो कष्ट पाकर होगी और न कष्ट देकर। आप चलते-फिरते मृत्यु का आलिंगन करेंगे।

तीसरे सूत्र में जब हम बच्चों के साथ रहते हैं तो बच्चों की आलोचना करना बन्द कर दें। अपनी उपलब्धियों का बखान भी न करें, कारण कोई आपकी पूर्व में अर्जित उपलब्धि को सुनना नहीं चाहेगा। आजकल के बच्चे अधिक चतुर एवं बुद्धिमान होते हैं। अत: उनको बिना माँगे राय भी देने का प्रयास न करें। अगर गल्ती भी करें तो गल्ती के लिये लांछित करने के बजाय यह बोध करा दें कि यह काम ऐसे नहीं, ऐसे कर लेते तो और अच्छा होता। हम रामायण के पात्र बूढ़े जामवन्त से शिक्षा ले सकते हैं। जब उन्होंने हनुमान जी महाराज को लंका जाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने हनुमान जी महाराज को केवल उनके अन्दर छिपे बल का बोध कराया। जैसे ही बोध कराया कि पुरुष के अन्दर छिपा महापुरुष जागृत हो गया। फिर 'कौन सो काज कठिन जग माहिं' की तरह हनुमान जी महाराज लंका की ओर उड़ चले।

चौथे सूत्र में यह ख्याल रखें कि वृद्धावस्था में जाने के पहले याने अपने बच्चों को पूरी जिम्मेदारी देने के समय अपनी हैसियत के अनुसार अपने लिये सुरक्षित धन अवश्य रख लें। यह देखा गया है कि आपने बच्चों को सब कुछ दे दिया और अपने लिये कोई सुरक्षित अर्थ-व्यवस्था नहीं रखी तो कभी खर्च करने का या किसी को दान देने का या कहीं घूमने-फिरने जाने का मन होने पर अगर बच्चों ने देने से मना कर दिया तो आपको अपार कष्ट होगा। कष्ट से बचने के लिये आवश्यक है कि अपने लिये धन को सुरक्षित कर लें। इस बात का ध्यान रखें कि बच्चों से छिपाकर कोई काम न करें वर्ना उनकी श्रद्धा में कमी आ जाएगी। बच्चों से एक बार माँग कर सकते हैं। उनको देने के लिये बार-बार टोका टाकी न करें। उनके नहीं देने

पर आप अपनी सुरक्षित रकम में से खर्च करें, कष्ट नहीं होगा। अगर आप इस भ्रम में रहेंगे कि बच्चों के लिये मैंने इतना किया या इतना दिया तो मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति करना उनकी नैतिक जिम्मेदारी है और यह सोच कर कोई सुरक्षित अर्थ व्यवस्था नहीं की, तो सच मानिये आपको कष्ट हो जायेगा। यह अनुभूत प्रयोग है।

पाँचवें सूत्र में चिंता करना बन्द कर दें। चिंता हमेशा काल्पनिक होती हैं। अपनी चिंता को चिंतन में बदल दें। यह ध्यान रखें कि चिता तो एक बार जलाकर अस्तित्व समाप्त कर देगी लेकिन आपकी चिंताएँ आपको तब तक सालती रहेंगी जब तक आप जीवित रहेंगे। चिंताएँ आपके शरीर को भीतर से उसी प्रकार खोखला कर देगी जैसे घुन लकड़ी को भीतर से खोखला कर देती है। चेहरे पर हमेशा हँसी खुशी एवं प्रसन्नता रखें तो चिंताएँ अपने आप दूर हो जाएँगी, ठीक उसी प्रकार जैसे प्रकाश के आने पर अंधेरा अपने आप चला जाता है। अंधेरे को भगाना नहीं पड़ता। अपने को निराशा, उदासी, हताशा से दूर रखें।

छठें सूत्र में अपनी दिनचर्या में अपने को व्यस्त रखें। यह ध्यान रखें कि आलसी जीवन भी शरीर को रोगी बना देता है। वृद्धावस्था में व्यस्त रहने के लिये पढ़ने का अभ्यास डाल लें। आप आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन करें तो ज्यादा शान्ति मिलेगी। लिखने का अभ्यास हो जाय तो पढ़ना सार्थक हो जाएगा। अपने लेखों को समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजें। अपने विचार रखने का अवसर मिले तो न चूकें। सभाओं में, स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालयों में, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन में भी अवसर मिले तो अपनी पसन्द के विचारों से लोगों को अवगत करायें। किसी सेवा संस्थान के सेवा कार्यों में अपनी सेवाएँ दें। आप मानकर चलें कि आपकी सेवा ही आपकी पूजा हो जाय तथा मानव सेवा माधव सेवा हो जाए।

सातवाँ सूत्र है— ऐसा भी घरों में देखा गया है कि लड़के कमाते हैं तो अपनी मर्जी से खर्च भी करना चाहते हैं। जैसे कई-कई मोटर कारें रखना, कीमती साड़ियाँ खरीदना, घूमने-फिरने में महंगे होटलों में ठहरना, हीरे-सोने के महंगे जेवर बनवाना आदि। वृद्धजनों को बच्चों के खर्चों की अनदेखी करनी चाहिये बशर्ते कि वे अपनी कमाई में से खर्च करते हैं। अगर वृद्धजन टोका टाकी करेंगे तो बच्चे तो मानेंगे नहीं, लेकिन वृद्धजन अवश्य अशान्त

हो जायेंगे। हाँ, कर्ज लेकर या आमदनी से अधिक खर्च कर रहे हैं तो अवश्य बच्चों का ध्यान ऐसे खर्चों के प्रति आकृष्ट कर दें। फिर भी नहीं मानते तो करने दें, वृद्धजन स्वयं अशान्त होने से बचें।

इस लेख में मैंने केवल वृद्धजनों को सुझाव दिया है कि उन्हें परिवार में कैसे रहना चाहिये। मेरा अनुभव बताता है कि वृद्धजन अगर इन सूत्रों का पालन करने लग जाएँ तो परिवारों में टूटन का होना रुक जाएगा तथा सभी पीढ़ियों में साथ रहने की समझदारी बढ़ेगी। जीवन न तो भार स्वरूप अपने लिये होगा और न अपने परिवार के लिये। मृत्यु भी कष्टकारक नहीं होगी और सच माने मृत्यु भी महोत्सव हो जाएगी।



सीख

एक राजा बड़े दयालु थे। हमेशा यही सोचते रहते कि प्रजा का कल्याण कैसे करें। एक बार अपने काफिले के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में अचानक उनके सिर से एक छोटा पत्थर आकर लगा। साथ चल रहे सैनिकों में हड़कंप मच गया कि राजा को पत्थर किसने मारा। फौरन तलाश शुरू हुई और सैनिक कहीं से एक बुढ़िया को पकड़कर ले आये। बेचारी बुढ़िया सैनिकों के काफिले और राजा को देख थर-थर कांप रही थी। उसने कहा- महाराज, मेरा आपको पत्थर मारने का कोई इरादा नहीं था, न ही मुझे पता था कि आप इधर से गुज रहे हैं। मेरा पोता भूखा था और मैं तो पेड़ पर लगा आम देखकर उसे पत्थर मारकर गिराने की कोशिश कर रही थी। पर वह गलती से आपको लग गया।

यह कहते हुए बुढ़िया ने राजा से क्षमादान की गुहार की। सभी सैनिक और राजा के मंत्री उत्सुकता से राजा की ओर देख रहे थे। आखिर राजा ने मंत्री को आदेश दिया- इस बुजुर्ग महिला को एक हजार रुपये देकर सामान उसके घर पहुँचा आओ। मंत्री ने चकित होकर पूछा- महाराज, इसने आपको पत्थर मारा है और आप इसे इनाम दे रहे हैं, इससे तो प्रजा में गलत संदेश जाएगा। राजा ने कहा- जब बिना प्राण और बुद्धिवाला पेड़ पत्थर मारने पर भूखे को फल देता है, फिर मेरे पास तो ये दोनों चीजें हैं, मैं इसे खाली हाथ कैसे विदा कर सकता हूँ।

गीता का कर्मयोग

- सत्यनारायण झुनझुनवाला

गीता के सभी अठारहों अध्याय 'योग' हैं। इस ग्रंथ में कोई ज्ञानयोग देखता है तो कोई भक्ति योग। कोई सांख्य योग देखता है तो कोई कर्म-सन्यास योग। परम मोरारी बापू ने भी गीता को योग शास्त्र कहा और रामयण को प्रयोग शास्त्र। गीता के योग के सूत्रों का प्रयोग देखना हो तो रामायण में मिलेगा। लेकिन कई विद्वानों की दृष्टि में भी गीता का प्रतिपाद्य विषय 'कर्मयोग' है न कि ज्ञान-भक्ति-सांख्य योग आदि। कारण अर्जुन को गीता का उपदेश देकर भगवान कृष्ण ने उसे भयंकर युद्ध रूपी कर्तव्य कर्म करने की प्रेरणा दी और गीता के अन्त में भगवान कृष्ण को अर्जुन ने कह दिया कि :

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। (१८.७३)

अर्जुन क्षत्रिय होकर मोहग्रस्त हो गया और अपने गाण्डीव धुंनष को रख दिया तथा 'युद्ध नहीं करूँगा' इसके लिये बड़े-बड़े तर्क देने लग गया। भगवान कृष्ण ने उन सभी तर्कों का सटीक उत्तर देकर तथा स्वधर्म का बोध कराकर उसे युद्ध करने याने कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त करने का मूलमंत्र दे दिया जिसके कारण अर्जुन युद्ध में प्रवृत्त हुआ और विजयश्री प्राप्त किया। हम भी अपने जीवन में अर्जुन की तरह कई-कई बार किंकर्तव्य विमूढ़ होते हैं और हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिए, इसका निश्चय नहीं कर पाते तो महात्मा गांधी की तरह जायें गीता माता की शरण में, दुविधा नष्ट हो जाएगी और निश्चयात्मक बुद्धि मिल जायगी। जब दुविधा समाप्त हुई

और मन में निश्चय हुआ तो हम स्वभावत: कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त हो जायेंगे। बस, यही गीता का मूल प्रतिपाद्य विषय है।

गीता का जोर सतत कर्म पर है। कृष्णं जनक का उदाहरण देते हैं। जनक को भी कर्म से पूर्णता मिली। फिर ज्ञानी के लिये वह कहते हैं कि वह कर्म में आसक्त अज्ञानी को विचलित न करे कारण अज्ञानी आसक्त होकर कर्म करते हैं। ज्ञानी अनासक्त होकर कर्म करते हैं। अनासक्त होकर कार्य करने वालों के लिये भगवान कृष्ण ने कह दिया- 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः स्तत्ज देवेतरोजन:' याने श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं बाकी के लोग वैसा ही आचरण करने लगते हैं। प्रकृति के सभी सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु निरन्तर समभाव से चलायमान है। उनका समता का भाव ही अनासक्ति का द्योतक है। सम दर्शन करने वाले को न तो दु:ख में उद्विग्नता होती है और न सुख में स्पृहा (प्रीति)।

गीता के वक्ता श्रीकृष्ण हैं और जिज्ञासु हैं अर्जुन। श्रीकृष्ण एकतरफा उपदेशक नहीं हैं। अर्जुन प्रश्न-प्रतिप्रश्न करते हैं, कृष्ण समाधान देते हैं। गीता कहती है- 'योग: कर्मसु कौशलम्।' याने कुशलतापूर्वक किया गया कर्म ही योग है। गीता में योग को तप, ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ माना है। योग क्या है? 'आसक्ति त्याग कर समुचित कर्म करना ही योग है।' हे अर्जुन, 'तेरा कर्म करने में अधिकार है, फल तो प्रकृति की सारी शक्तियों के योग से आता है। अत: तू फल की आशा छोड़, कर्म करने में प्रवृत्त हो जाओ।'

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता उपदेश ऐसी विषम परिस्थिति में दिया था जब अर्जुन के लिये यह निर्णय कर पाना कठिन था कि कर्तव्य क्या है? कर्तव्य यदि युद्ध है तो विनाशकारी है। कर्तव्य यदि पलायन है तो कायरता है एवं सामाजिक हितों के विरुद्ध है। इस ऊहापोह रूपी अंधकार में डूबते अर्जुन के माध्यम से मानव मात्र को भगवान ने गीता के रूप में कर्तव्य की जीवन के उद्देश्य एवं जीने की कला के रूप में सुन्दर एवं अद्भुत व्याख्या प्रस्तुत की एवं इसे कर्मयोग नाम दिया। कारण 'गीता' हिन्दुओं का धर्मग्रंथ नहीं है। इस ग्रंथ में कहीं हिन्दू शब्द आया भी नहीं। यह तो मानव मात्र के कल्याण का ग्रंथ है चाहे ग्रंथ वह किसी देश, सम्प्रदाय, काल, जाति का हो। यह ग्रंथ सार्वकालिक, सार्वजनिक एवं सार्वदेशिक है। यह ग्रंथ हमें

जीवन जीने की कला देता है तथा हमारे जीवन को मूल्यवान बनाता है।

मानव धर्म का सर्वोत्कृष्ट रूप कर्तव्य कर्म गीता का प्रतिपाद्य विषय है। गीता में भगवत् प्राप्ति के अन्य सभी साधनों से कर्मयोग को श्रेष्ठ माना गया है। कहा गया है कि योगी तपस्वी से श्रेष्ठ है, ज्ञानी से श्रेष्ठ है, आसक्तिपूर्वक निरन्तर कर्म में लगे रहने वाले से श्रेष्ठ, अतः अर्जुन तू योगी बन। 'तस्मात् योगी भवार्जुन।' कर्तव्य के महत्व का प्रतिपादन करने हेतु गीता में यहाँ तक कह दिया गया कि केवल अग्नि में पकाये भोजन का त्याग करने वाला या केवल लौकिक व्यवहार का त्याग कर देने वाला सन्यासी या योगी नहीं है बल्कि जो कर्मफल में अनासक्त हुआ निरन्तर कर्तव्य कर्म का पालन कर रहा है वही सन्यासी या योगी कहलाने योग्य है। समाज में परस्पर निर्भरता एक आवश्यक एवं उपयोगी तत्व है। विकसित एवं साधन सम्पन्न जीवन-व्यवस्था का मूल परस्पर निर्भरता ही है। इस प्रक्रिया का आधारभूत तत्व कर्तव्य पालन ही है। किसी भी स्तर पर कर्तव्य की उपेक्षा होगी तो सामाजिक व्यवस्था विघटित होने लगेगी। इसीलिये गीता में कहा गया है कि अपने कर्तव्य कर्म के पालन से मनुष्य परमतत्व को प्राप्त कर सकता है। "स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः" ऐसे कर्तव्यनिष्ठ लोगों की भगवान ने अपने प्रियजनों में गिनती की है।

सफलता का पहला सिद्धान्त है कर्म। कर्म की महिमा को ऋषियों-मुनियों, संत-महात्माओं और विचारकों ने अनेक प्रकार से समझाया है। इनका एक ही तात्पर्य है कि प्रकृति का मुख्य कारक कर्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। नदी का प्रवाह निरन्तर कर्म करने का संदेश देता है। शरीर में जो तत्व विद्यमान है उन्हें प्रवहमान होना चाहिये। जीवन के लिये कर्म की अवधारणा अमृत के समान है। अकर्म पृथ्वी पर मृत्यु का पर्याय है। स्थिर जल तालाब में संचित होकर दुर्गन्धयुक्त अपेय हो जाता है जबकि प्रवाह जल को स्वच्छ पीने योग्य बनाता है। आलस्य और प्रमाद में समय गंवाना वस्तुतः तालाब में स्थिर पानी की तरह जीवन को उपेक्षित करने जैसा है। सार्थक जीवन का मूलमंत्र है क्रियाशील जीवन।

अकर्मण्यता ने जीवन को सर्वाधिक क्षति पहुँचाई है। कल्पना को साकार करने के लिये कर्म का आश्रय अनिवार्य है। जीवन में प्रत्येक सफलता के पीछे कर्म का निश्चित योगदान पाया जाता है। इसीलिये कहा

गया है- 'सकल पदारथ एहि जग माहिं, करमहीन नर पावत नाहिं।' कर्मशीलता एवं कर्महीनता के मध्य यह जीवन है। कर्मशीलता हमारे जीवन को मूल्यवान एवं उपयोगी बनाती है, कर्महीनता हमें विनाश के गर्त की ओर ले जाती है।

हमारे शास्त्रों में उल्लेख मिलेगा कि कर्तव्य कर्म का पालन ही धर्मधारण है। केवल भगवान की पूजा करें लेकिन अपने कर्तव्य कर्म का पालन न करें तो ऐसी पूजा को भगवान भी स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत कर्तव्य कर्म का पालन करें भले ही पूजा न करें तो भगवान भी प्रसन्न होंगे। इसे उदाहरण से यों समझा जा सकता है। किसी प्यासे को पानी पिलाना ही भगवान शंकर का जलाभिषेक है। इसी प्रकार कल्याण कार्य में प्रवृत्त रहना ही भगवान शंकर की अप्रत्यक्ष पूजा है। गीता में भगवान ने यह स्पष्ट किया है कि तत्वज्ञ, भगवत्प्राप्त एवं सिद्ध पुरुषों को भी अपने स्वाभाविक कर्तव्य कर्म का त्यागं नहीं करना चाहिये क्योंकि यदि वे कर्तव्य कर्मों का त्याग करते हैं तो अन्य लोग भी उनका अनुसरण करेंगे एवं साधना से विचलित हो जायेंगे। साधना करने वाला भी योगी है एवं साध्य को प्राप्त करने वाला भी योगी है। वस्तुतः साध्य की प्राप्ति पर साधन और साध्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता। सच मानें योगी को कर्तव्य और ईश्वर में कोई भेद नहीं दिखाई देता। तभी तो भक्त रैदास ने मोची का काम करके भगवत् प्राप्ति की एवं सदना कसाई भी अपने कार्य को ईमानदारी से करते हुये ईश्वरमय हो गया। इसलिये भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं, "हे अर्जुन मुझे तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्य है तो भी मैं सदैव कर्म में लगा रहता हूँ।"

परमात्मा की आराधना की विविध पद्धतियों में निष्काम कर्म श्रेष्ठ है। गीता में कर्म को यज्ञ की संज्ञा दी गई है। गीता में उल्लेख है कि यज्ञ से बचे हुये अन्न खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपने शरीर के पोषण हेतु ही अन्न पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं। तात्पर्य यह है कि अपने से सम्बन्धित प्राणियों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करने के उपरान्त ही स्वयं उपभोग करना उचित है। इस प्रकार का आचरण यज्ञ कहलाता है। कर्म ही यज्ञ है- 'यज्ञः कर्मसमुद्भवः।' स्वयं भगवान भी कर्मरूप यज्ञ में अधिष्ठित हैं।

राजा जनक को विदेह कहा गया है। विदेह वह होता है जिसमें न देहासक्ति हो और न देहाभिमान हो। यही कारण है कि राजा जनक जैसे ऐश्वर्यशाली जीवन व्यतीत करने वाले भी परम सिद्धि को प्राप्त हुये। अतः निष्कर्ष यह है कि कर्तव्य कर्म का पालन ही गीता का कर्मयोग है।

गीता मनुष्य मात्र को कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त करने वाला ग्रंथ है। स्वामी विवेकानन्द जी अमेरिका में अपने प्रवचन में गीता के कर्मयोग का जब प्रतिपादन कर रहे थे तो एक श्रोता स्वामी जी से पूछ बैठा, 'जिस देश में 'गीता' हो वह आज आठ सौ वर्षों से गुलामी क्यों झेल रहा है?' गीता का कर्मयोग अपनाने से जीवन उपयोगी हो न कि केवल अध्ययन, भाषण, उपदेश या ग्रंथ की महत्ता बताने से। यही कारण है कि हमारा धर्म धारण करने पर ही धर्म माना गया।

गीता का प्रतिपाद्य विषय कर्मयोग है। यह मनुष्य मात्र का जीवन बनाता है। इसलिये हमारे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश महोदय ने कहा कि गीता को राष्ट्रीय धर्मग्रंथ घोषित किया जाना चाहिए। ठीक उसी प्रकार जैसे हमारा राष्ट्र गान है, राष्ट्रीय पक्षी मोर है एवं राष्ट्रीय पशु 'गाय' है। ऐसा हमारे देश के राजनेता कर सकें तो निश्चित ही गीता का महत्व बढ़ेगा। देशवासियों का ही नहीं, विश्व के लोगों का ध्यान गीता की ओर आकृष्ट होगा एवं यह ग्रंथ मनुष्य मात्र के लिये कल्याणकारी साबित होगा। गीता का उपदेश उस समय भी उपयोगी था जब रणांगन में कहा गया, आज भी उपयोगी है एवं अनन्त काल तक उपयोगी रहेगा। यह अमर ग्रंथ है। इसलिये पूज्य श्री मोरारी बापू ने कहा गीता पुस्तक नहीं है यह हमारे देश का मस्तक है।



- जीवन का प्रत्येक क्षण मूल्यवान है।
- मानव-जीवन की श्रेष्ठता है कि वह कर्म करने के लिए स्वतंत्र है।
- संत निन्दा-स्तुति से परे रहते हैं।
- कथा में प्रीति कराने वाले संत ही होते हैं।
- शरीर रथ है, आत्मा रथी और मन सारथी।

गहना कर्मणो गतिः

– दीनानाथ झुनझुनवाला

कर्म की गति बड़ी गहन है। आज तक कर्म की गति को कोई व्याख्यायित नहीं कर पाया। बस, इतना ही कहते हैं- 'जो जस करहिं सो तस फल चाखा।' याने जो जैसा कर्म करेगा उसी के अनुसार फल पायेगा। एक ही प्रकार के कर्म का फल दो व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न रूप में मिलता है। जब कर्म फल की कोई व्यवस्था और व्याख्या नहीं कर पाया, तो भगवान कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में यह कहकर पूर्ण विराम लगा दिया कि कर्म की गति बड़ी गहन है।

क्यों गहन है इसको हम जरा समझने का प्रयास करें। धर्मात्माओं को दुःख, पापियों को सुख, आलसियों को सफलता, उद्योगशीलों को विफलता, विवेकवानों पर विपत्ति, मूर्खों के यहाँ सम्पत्ति, दंभियों को प्रतिष्ठा, सत्यनिष्ठों को तिरस्कार प्राप्त होने के अनेक उदाहरण इस दुनिया में देखने को मिलते हैं। कोई जन्म से ही वैभव लेकर पैदा होता है तो कोई जन्मजात विकलांग होता है। आदमी इन सबका ज्यों-ज्यों कारण समझने का प्रयास करता है, उसे असफलता ही हाथ लगती है। इन विरोधाभासों को देखकर भाग्य, ईश्वर की मर्जी, कर्म की गति के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रश्न और संदेह पैदा होने लगते हैं। आज का तर्कप्रधान समाज इन प्रश्नों का समाधान चाहता है। हम कर्म के प्रकार, कर्म की गति और उसके फल पाने के सम्बन्ध में विचार करने का प्रयास करेंगे और देखेंगे कि हम इस गंभीर समस्या का कितना उत्तर खोज पाते हैं और कितना अनुत्तरित रह जाता है। इस सम्बन्ध में यहाँ विभिन्न धर्मशास्त्रों, विद्वानों, मनीषियों के विचारों का प्रस्तुतीकरण

मात्र है। मेरी कोई मौलिक खोज नहीं है। अतः मेरे विचारों से संतुष्टि न हो तो इस पर और अधिक गंभीर शास्त्र-मंथन की आवश्यकता है।

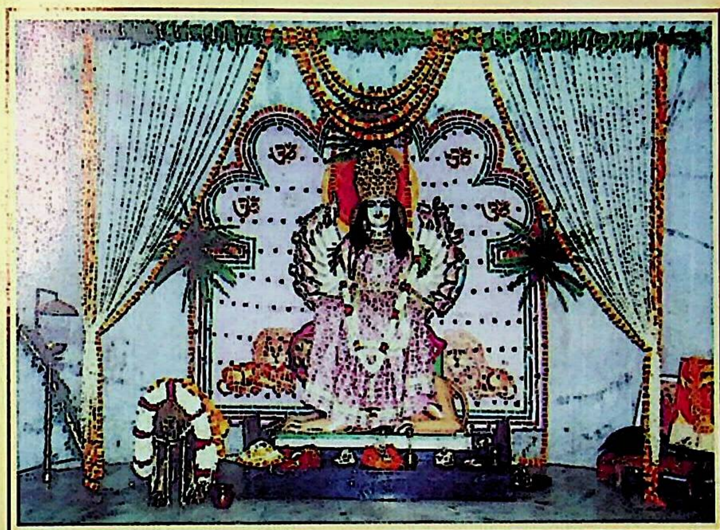
गरुड़ पुराण में वर्णन आता है कि यमलोक में चित्रगुप्त सबका लेखा-जोखा रखते हैं लेकिन प्राणिमात्र का लेखा-जोखा और वह भी पूरे जीवन भर का रखना एवं उसके अनुरूप फल देना बड़ा अटपटा सा लगता है। यह संभव प्रतीत नहीं होता। यह भी बोधगम्य नहीं लगता कि ब्रह्मांड में कहीं पर भी स्वर्ग नरक की भौगोलिक स्थिति है। नरक स्वर्ग की कल्पना मात्र भय और लालच है। नरक जहाँ भय का प्रतीक है, वहीं स्वर्ग लालच का।

हमारे कर्म फल कहाँ अंकित होकर रहते हैं इसका उत्तर आज के विज्ञान ने देने का प्रयास किया है। आप कम्प्यूटर की छोटी सी चिप्स में कितनी मेमोरी स्टोर कर लेते हैं ठीक उसी प्रकार मानव मन की अन्तःचेतना में कर्मफल अंकित होते रहते हैं। इस अन्तःचेतना में हमारे कर्म की रेखायें बिना फल दिये मिटती नहीं। कोई यह भ्रम न पाले कि गंगा स्नान से, मूर्ति स्पर्श से, तीर्थयात्रा से हमारे पाप-पुण्य के कर्मफल कट जाते हैं। अगर हम दुःख पा रहे हैं तो निश्चय ही हमारे पाप का फल है तथा सुख पा रहे हैं तो हमारे पुण्य का फल है। चित्रगुप्त नाम से भी यह स्पष्ट है। गुप्त रूप से हमारे कर्म की रेखायें हमारे अन्तःमन में चित्रित है। कर्मफल में एक बात और देखने को मिलती है कि पाप-पुण्य का फल हम अलग-अलग भोगते हैं। दोनों का समायोजन नहीं होता। यही कारण है कि पुण्य आत्माओं को भी कष्ट भोगना पड़ता है।

बाहरी दुनिया में मुल्जिम को सजा दो विभाग देते हैं- एक पुलिस, दूसरा अदालत। दरअसल सजा तो अदालत ही देती है। पुलिस विभाग तो केवल विवेचना करता है तथा न्यायालय की मदद करता है। विभिन्न लोगों द्वारा किये गये एक ही प्रकार के कर्म का फल अलग-अलग होता है। अतः यह जानना आवश्यक है कि हमारे प्रत्येक कर्म का हेतु क्या है। एक उदाहरण से हम इसे समझने का प्रयास करें। न्यायाधीश के पास तीन खूनी पकड़ कर लाये गये। इनमें एक को बरी कर दिया, दूसरे को पाँच साल की कैद एवं तीसरे को फाँसी। हत्या तीनों ने की। पहला हत्यारा मकान बनाने वाला मजदूर था। छत पर काम करते वक्त पत्थर का टुकड़ा टूट कर गिर गया और नीचे का राहगीर मर गया। जज ने देखा कि मजदूर के कारण हत्या तो हुई लेकिन उसने जानकर हत्या नहीं की। अतः न्यायालय ने उसे

निर्दोष माना। दूसरा मुल्जिम एक किसान था। खेत काटते समय चोर को ऐसी लाठी मारी कि वह मर गया। अदालत ने देखा कि चोरी करने के कारण अपराध हुआ लेकिन छोटे अपराध की इतनी बड़ी सजा उचित नहीं। अत: केवल पाँच वर्ष की सजा दी गई। तीसरा मुल्जिम डाकू था। उसने जान भी मारी एवं धन भी लूटा। न्यायालय ने उसे फाँसी की सजा सुनाई। अत: सजा चाहे न्यायाधीश दे या हमें पाप-पुण्य भोगना पड़े, सभी के पीछे कारण एक ही है, लेकिन विचारणीय होता है कि उस कर्म का हेतु क्या है। अदालती सजा में तो गवाह के अभाव में या अन्य कारणों से अपराधी छूट सकता है एवं निरपराधी सजा पा सकता है। लेकिन अपने ही अन्त:चेतना में जिन कर्मों की रेखाएँ हमने संचित कर रखी हैं उनके कारण पाप-पुण्य झेलने में भूल नहीं होती। पाप-पुण्य का परिणाम भावना की उदासीनता एवं प्रेम की तत्परता के अनुसार न्यूनाधिक होगा। जैसे एक भूखा व्यक्ति लाचार होकर चोरी करता है, दूसरा शराब पीने के लिये चोरी करता है तो दोनों के पाप की गहराई में कमी बेसी होगी। अत: पाप का भागी भी उसी अनुपात में होगा। अपने पाप-पुण्य का निर्माण हम स्वयं करते हैं। दूसरों को दोष या श्रेय देना अनुचित है। जैसे कभी-कभी घर में नई बहू आई और कोई गमी हो गई तो सारा उलाहना उसके मत्थे मढ़ दिया जाता है कि अभागी, कलमुंही, डायन घर में आ गई। वहीं अगर घर में आमदनी बढ़ गई तो उसको लक्ष्मी मान लिया जाता है। सच मानिये नई बहू न डायन है, न लक्ष्मी। बहू हमारी बहू है, उसे सहर्ष स्वीकार करें। रामायण के इस सूत्र को याद रखें - 'काहू न कोई दुख सुखकर दाता, निज निज कर्म भोग सब भ्राता।' दूसरा कोई प्राणी या पदार्थ किसी को सुख-दु:ख देने की शक्ति नहीं रखता।

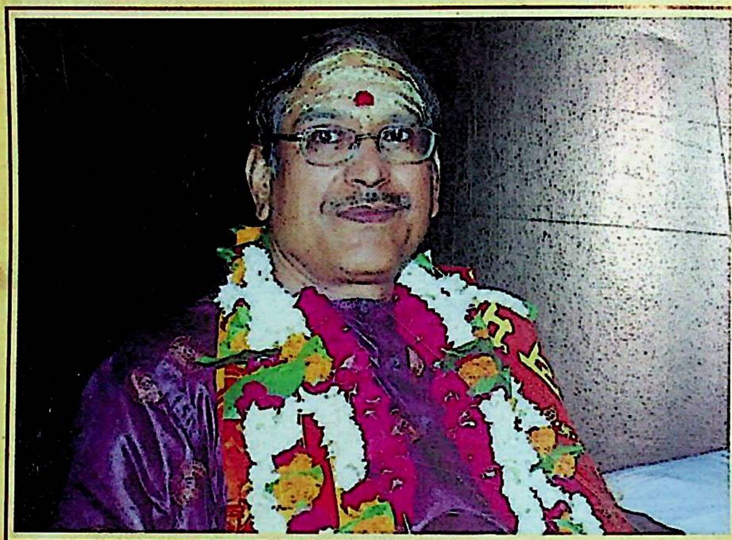
कुछ लोगों की गलत मान्यताएँ एवं धारणाएँ भी हैं। जैसे हमारे भाग्य में जितना लिखा है उतना तो हमें मिलेगा ही या हमारी जितनी आयु निश्चित है उतने तो हम जीयेंगे ही। ऐसे भाग्यवादियों को कह दिया जाय कि शुभ-अशुभ कर्म से भाग्य की रेखायें बदलने में आप सक्षम हैं तथा अपने खान-पान में संयम एवं प्रात: भ्रमण, योग अपनाने से आपकी आयु बढ़ती एवं अभक्ष्य चीजों के सेवन से आयु घटती है। सबके मूल में एक ही सूत्र काम कर रहा है- 'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।' जीवन में कर्म की प्रधानता को सर्वोपरि समझें। जितने लोग महान होते हैं अपने विवेकपूर्ण कर्मों के करने के कारण।



माँ अष्टदशभुजा देवी के श्रृंगार का एक मनोरम दृश्य



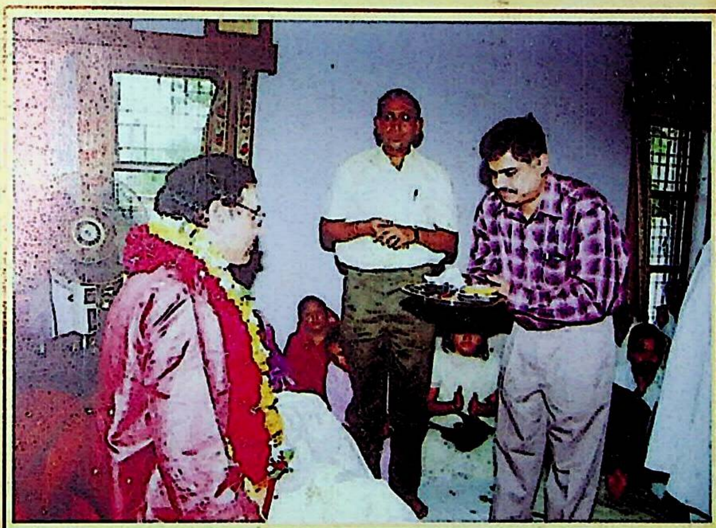
दिनांक २९ जुलाई ०७ को विराट पत्रिका के विमोचन के अवसर उपस्थित माता जी, पूज्य गुरुदेव, श्री सूर्यपाल सिंह (सहायक आयुक्त स्टाम्प), श्री अरूण सिन्हा (सचिव मुख्य मंत्री), श्री अनुग्रह नारायण सिंह (विधायक-चायल, इलाहाबाद), श्री ब्रह्म शंकर त्रिपाठी (पूर्व मंत्री होमगार्ड)



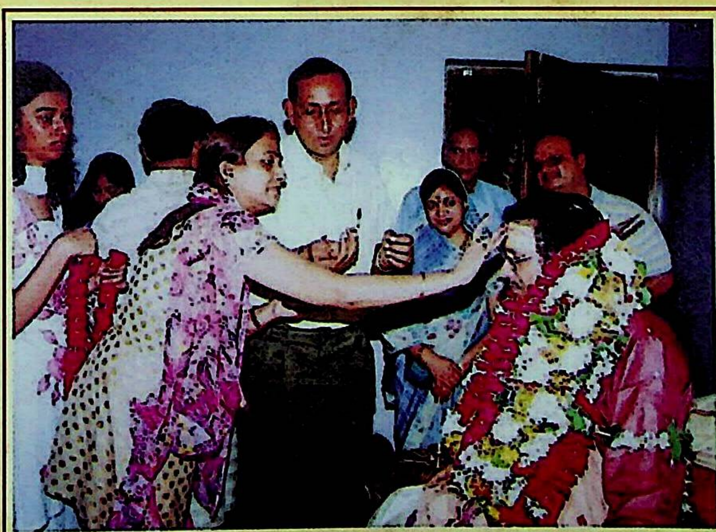
महामहोपाध्याय आचार्य डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी जी महाराज



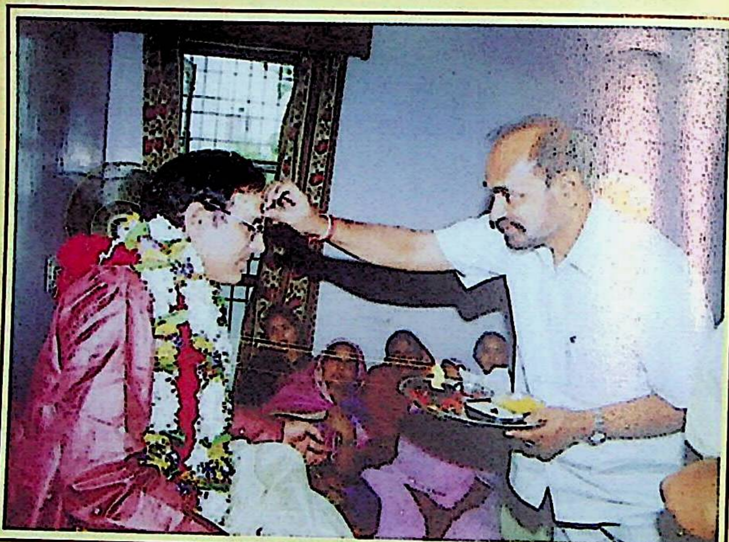
पूज्यनीया श्रीमती किरण त्रिपाठी जी



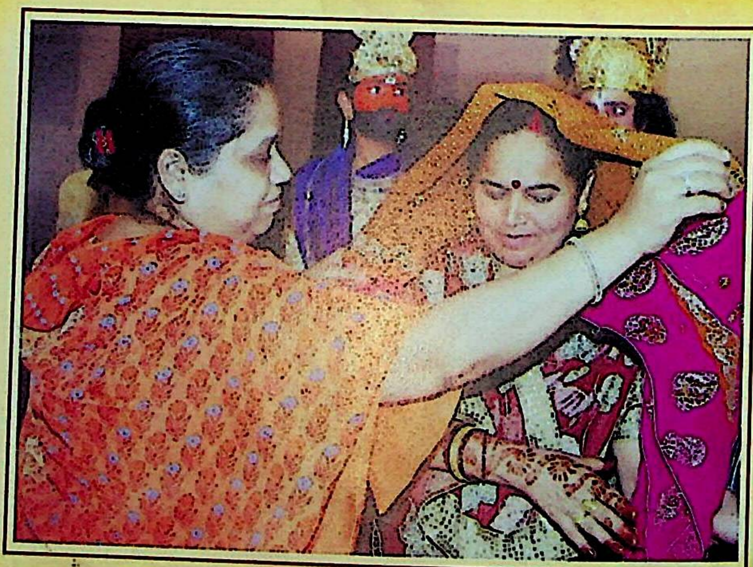
गुरूपूर्णिमा के अवसर पर अपने आराध्य गुरूदेव का पूजन अर्चन करते हुए
श्री अरूण सिन्हा (सचिव - मुख्य मंत्री) व
श्री सूर्यपाल सिंह (सहायक आयुक्त स्टाम्प, गाजीपुर)



गुरूपूर्णिमा के पावन पर्व पर अपने आराध्य गुरूदेव का
पूजन अर्चन करते हुए भक्तगण



गुरूपूर्णिमा के अवसर पर अपने आराध्य गुरूदेव का पूजन अर्चन करते हुए
श्री अनुग्रह नारायण सिंह (विधायक - चायल, इलाहाबाद)



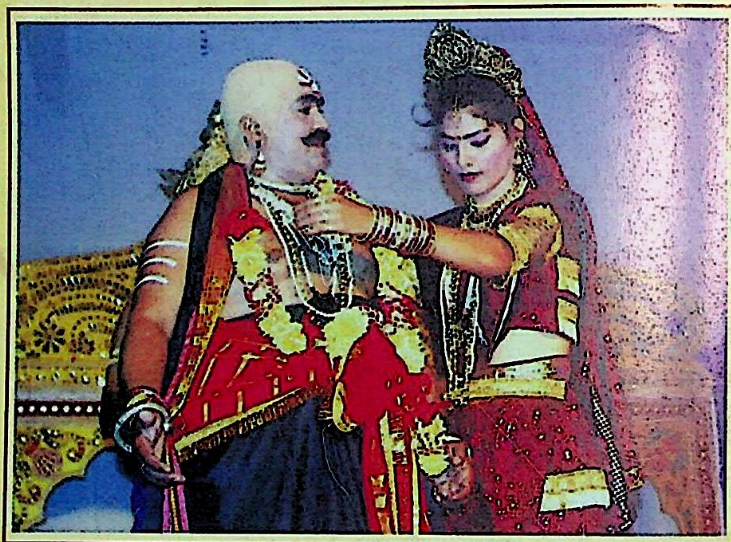
वार्षिकोत्सव के समापन पर पूज्य माताजी श्रीमती किरण त्रिपाठी को
चुनरी ओढ़ाते हुए श्रीमती अंजू झुनझुनवाला

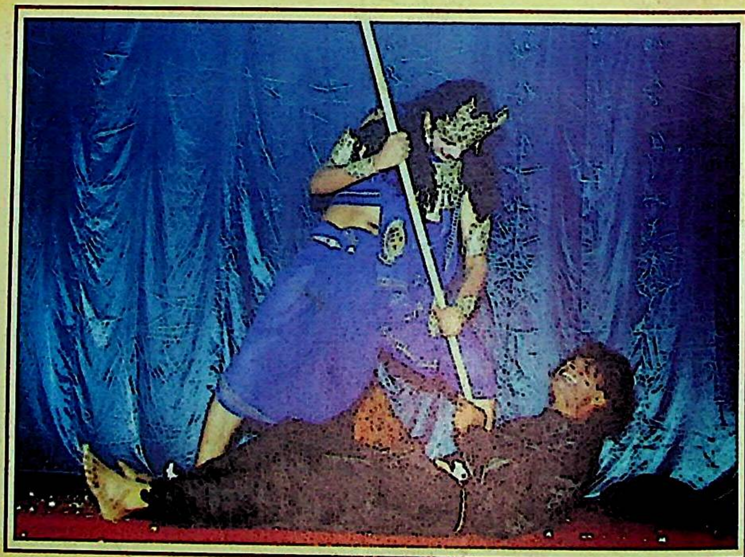


वार्षिकोत्सव दिनांक २७ मई २००८ को श्रीश्याम प्रभु की आरती उतारते हुये महामहोपाध्याय आचार्य डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी जी महाराज



विश्वविख्यात तबलावादक पं. अशोक पाण्डेय को पगड़ी पहना कर आशीर्वाद देते हुए महाराज जी।
महाराज जी ने कामना की है कि अशोक पाण्डेय भावी तबला सम्राट होंगे।





"तुमसे बड़ा ना दानी श्याम"

स्कन्ध पुराण पर आधारित खाटू श्याम की सम्पूर्ण जीवन गाथा की विशाल नाट्य प्रस्तुति के दृश्य



वार्षिकोत्सव २७ मई २००८ के समापन पर सहनृत्य की मुद्रा में श्री सत्यनारायण झुनझुनवाला
व श्रीमती अंजू झुनझुनवाला



वार्षिकोत्सव २७ मई २००८ के समापन पर सहनृत्य की मुद्रा में गुरूदेव महामहोपाध्याय आचार्य डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी जी महाराज एवं पूज्यनीय माताजी श्रीमती किरण त्रिपाठी जी

हमारे शास्त्रों ने दु:ख की घटनाओं का प्रकार बताया कि वे दैविक, दैहिक, भौतिक याने तीन प्रकार की होती हैं और इनका हेतु होता है हमारे संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्म। दु:ख-सुख प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आते हैं। इससे सुर-नर-मुनि-दानव कोई नहीं बचता। सूरदास जी ने कह दिया- 'कर्मगति टारे नाहिं टरे।' दैविक दु:ख हैं जो मन को होते हैं जैसे चिंताएँ, आशंकायें, क्रोध, अपमान, शत्रुता, भय, शोक आदि। दैहिक दु:ख शरीर के होते हैं जैसे रोग, चोट, आघात आदि से होने वाले कष्ट। भौतिक दु:ख वे होते हैं जो अचानक अदृश्य प्रकार से आते हैं जैसे भूकम्प, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, महामारी, युद्ध आदि। इन्हीं तीन प्रकार के दु:खों की वेदना से मनुष्यों को तड़पता हुआ देखा जाता है। ये तीनों दु:ख हमारे मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक कर्मों के फल हैं। मानसिक पापों के परिणाम से दैविक दु:ख आते हैं, शारीरिक पापों के फलस्वरूप दैहिक और सामाजिक पापों के कारण भौतिक दु:ख उत्पन्न होते हैं।

तीनों प्रकार के दु:खों का हेतु हमारे तीन प्रकार के कर्म हैं - संचित कर्म वे हैं जो हम दिन भर अच्छे-बुरे कर्म करते हैं। प्रारब्ध कर्म वे हैं जो हमें आकस्मिक तरीके से मिलते हैं जैसे रोग से मृत्यु, मकान गिर पड़ना, धन खो जाना, गिर पड़ने से चोट लगना आदि। क्रियमाण कर्म शारीरिक हैं जिनका फल प्राय: साथ ही साथ मिलता रहता है। जैसे शराब पिया और नशा आया। भोजन किया और पेट भरा। जिन शारीरिक कर्मों के पीछे कोई मानसिक गुत्थी नहीं होती केवल शरीर के द्वारा शरीर के लिये किये जाते हैं वे क्रियमाण कहलाते हैं।

इसको एक उदाहरण से यों समझा जा सकता है। हमने भोजन किया, तत्काल पेट भर गया। हम पहलवान बनना चाहते हैं तो तत्काल नहीं बन सकते, वर्षों तक रियाज करेंगे तो बन पायेंगे। लेकिन जब भी बनेंगे इसी जीवन में। लेकिन हम जो दान देते हैं या सेवा कल्याण कार्य करते हैं उनका फल मिलना आवश्यक नहीं कि इसी ज़न्म में मिले। सेवा कार्य के फल जन्म जन्मान्तर में मिलते हैं याने खाया तो पेट भरा, हमारा क्रियमाण कर्म हो गया। इसी ज़ीवन में मिला वह संचित हो गया तथा आगे जन्मों में मिला, वह प्रारब्ध हो गया।

हमें दु:खों से घबड़ाने की आवश्यकता नहीं। अगर दु:ख आये हैं तो

सुख आने की संभावना बढ़ गई। कारण पहले रावण आये तभी राम के आने की संभावना बढ़ी। इसी प्रकार पहले कंस आये तभी कृष्ण आये। पहले काँटे आये तभी गुलाब आये एवं पहले कीचड़ हुआ, तभी कमल आया। याने कहने का तात्पर्य कि दु:ख का आना हमारे सुख के आने का संकेत है। दु:खों से परेशान होने के बजाय उन्हें सहन करें। आप यह मानकर चलें कि दु:ख मेरे साहस की परीक्षा लेने आये हैं। मैं तैयार हूँ और साहस पूर्वक तुम्हें स्वीकार करने के लिये छाती खोल कर खड़ा हूँ।

संसार को भी बुरा न बतायें। यह संसार भी ईश्वर की पुण्य कृति है। सृष्टि पर दोषारोपण करना तो उसके कर्ता पर आक्षेप करना होगा। अपने अज्ञान को अपने दु:ख का कारण माने। जो स्वयं शुद्ध-बुद्ध हैं उनको सृष्टि में कहीं बुराई नहीं दिखती। अत: सृष्टि में बुराई या दोष देखना हमारा ही दृष्टिदोष है। हम काला चश्मा पहनेंगे तो दुनिया काली दिखेगी, काला चश्मा उतार कर देखें कहीं कालापन नजर नहीं आयेगा। हम अपने अन्त:करण को पवित्र कर लें तो हमारे दु:खों की निवृत्ति हो जायगी।

हम अपनी दुनिया के स्वयं निर्माता हैं। हम प्राणवान हैं एवं संसार निष्प्राण वस्तु है। कुम्हार मिट्टी से चाहे घड़ा बनाये या दीपक, इसमें मिट्टी कुछ नहीं कहती और न करती है। इसी प्रकार सुनार सोने से चाहे गले का हार बनाये या अँगूठी, यह सुनार पर निर्भर करता है। सोना कुछ नहीं कहता। ठीक उसी प्रकार हम प्राणवान हैं एवं सृष्टि निष्प्राण है। इसे हम जैसा बनाना चाहते हैं। ठीक उसी प्रकार दुनिया में सद्‌गुण दुर्गुण दोनों हैं। यह दुनिया सत्, रज, तम का सम्मिश्रण है। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम कितनी खूबसूरती से बिना काँटों में उलझे गुलाबों को तोड़ लेते हैं। यह ध्यान रखें कि कोई स्त्री हमें कामी नहीं बना सकती जब तक हम स्वयं कामी न हों। काम का अवसर आने पर भी काम भोग को अस्वीकार करते देखा गया है। अर्जुन ने उर्वशी से भोग करना अस्वीकार कर दिया। हमारे चन्द्रशेखर आजाद ने भी एक नारी की याचना को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि तू मेरे जैसा पुत्र चाहती है तो मुझे ही अपना पुत्र मान ले। कहने का तात्पर्य कि हर व्यक्ति की अपनी एक अलग दुनिया है। हम समाज में अच्छे-बुरे व्यक्तियों को देखते हैं। इसी समाज में जब अच्छा होकर दूसरा रह

सकता है तो हम भी अच्छे होकर क्यों नहीं रह सकते? अच्छे बनने के लिये हमें अच्छा आचरण स्वीकार करना पड़ेगा।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि हर व्यक्ति जो मौज मार रहा है वह पूर्व जन्म का धर्मात्मा है और कठिनाई में पड़े व्यक्ति को पूर्व जन्म का पापी मान लेना भी उचित नहीं है। इस भ्रम के आधार पर आत्मग्लानि से बचें। कर्म की गति बड़ी गहन है उसे हम नहीं जानते। केवल परमात्मा ही जानता है। हम यह मानकर चलें कि हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं, लेकिन फल पाने में परतंत्र हैं। याने फल प्रभु आधीन हैं। मनुष्य की जिम्मेदारी अपने कर्तव्य कर्म का पालन करने की है।



प्रार्थना के स्वर

तुमसे लाग लगी जो मन की,
जग की हुई वासना बासी।
गंगा की निर्मल धारा की
मिली मुक्ति, मानस की काशी।

(निराली)

सूक्ति

लक्ष्य निश्चित होते ही आपके कर्म एक यात्रा का रूप ले लेते हैं और फिर आज नहीं तो कल आप लक्ष्य पर पहुँच ही जाते हैं। (वेदान्त तीर्थ)

- रामायण आदर्श-जीवन ढालने का सांचा है।
- रामकथा आदर्श जीवन की आचार-संहिता है।
- श्रीमद्भागवत परमहंसों की संहिता है।
- गीता माने, मानवता को मनोविज्ञान है।
- रामकथा जीवन के दर्शन का दर्पण है।

प्रभु कृपा क्या है?

– श्रीमती अंजू झुनझुनवाला

हम किसी का अच्छा स्वास्थ्य देखते हैं तो कह देते हैं इस पर प्रभु की असीम कृपा है या यह तकदीर का सिकंदर है। हमारी कमजोरी यह है कि हम उसके अच्छे स्वास्थ्य के पीछे छिपे रहस्य को जानने का प्रयास नहीं करते कि इसके अच्छे स्वास्थ्य का राज क्या है। यह जानने का प्रयास इसलिये नहीं करते कि कहीं उसके अच्छे स्वास्थ्य का राज प्रातः भ्रमण हो, योगाभ्यास हो, नियमित दिनचर्या हो, संतुलित भोजन हो, अखाद्य चीजें जैसे पान, पान-मसाला, सुर्ती, भांग, बीड़ी, सिगरेट, शराब, खैनी खाने से परहेज हो तो फिर हमें खराब स्वास्थ्य के कारण के रूप में अपनी कमी कमजोरी दिखाई देने लगेगी। हम उसके अन्दर छिपे अच्छे स्वास्थ्य का राज जान जायेंगे तो अच्छा स्वास्थ्य पाने के लिये हमें भी उसकी दिनचर्या अपनानी पड़ेगी। उसको यह समझ में नहीं आता कि उपलब्धि हमेशा क्रिया प्रधान होती है, कृपा प्रधान नहीं। वह उसके सिकंदर तकदीर का अर्थ भी समझने का प्रयास नहीं करेगा कि अगर इसका तकदीर है तो इसी का क्यों है, मेरा क्यों नहीं? क्या प्रभु मेरे से नाराज हैं कि इसका तकदीर तो उन्होंने सिकंदर कर दिया लेकिन मुझे वैसा तकदीर नहीं दिया। अगर प्रभु ऐसा करने लग जाएँ तो प्रभु को समदर्शी कौन कहेगा? अगर वह समदर्शी हैं तो किसी के प्रति कृपा करेगा और किसी के प्रति नहीं करेगा, ऐसा नहीं होगा। अतः हम यह समझने का प्रयास करेंगे तकदीर बनता कैसे है तथा प्रभु कृपा क्या है? तकदीर पर तथा प्रभु कृपा पर विद्वानों एवं संतों ने समय-समय पर काफी प्रकाश डाला है। मैं इस सम्बन्ध में आगे जो भी चर्चा करूँगा उसे पाठकगण मेरा पढ़ा सुना, समझा हुआ प्रसाद ही मानेंगे।

हमारा तकदीर हमारा कर्मफल ही है। हम कर्म जो भी करते हैं उसके फल तीन प्रकार से मिलते हैं। एक तो तत्काल मिल गया जैसे मैंने भोजन किया तो मेरा पेट तत्काल भर गया, यह तत्काल फल है। दूसरा इसी जन्म जन्म में कर्म फल मिलता है। जैसे हमको अच्छा खिलाड़ी, पहलवान बनना है तो वर्षों तक रियाज करना पड़ेगा लेकिन अच्छे खिलाड़ी या पहलवान जब भी बनेंगे, इसी जन्म में बनेंगे। यह हुआ इसी जन्म का कर्मफल। तीसरा फल होता है जो जन्म-जन्मान्तर में मिलता है याने आवश्यक नहीं कि इसी जन्म में मिल जाय। यह भी आवश्यक नहीं कि अगले जन्म में मिल जाए। किस जन्म में, किस रूप में तथा कितना मिलेगा यह किसी को नहीं मालूम। यह ईश्वराधीन है। इसीलिये भगवान कृष्ण ने गीता में यह कह दिया कि कर्म की गति बड़ी गहन, 'गहना कर्मणो गतिः' और इस कर्मफल के सम्बन्ध में पूर्ण विराम लगा दिया। इसका अर्थ हुआ कि मेरा आज का तकदीर पूर्व में किये गये कर्म का ही कर्मफल है। ईश्वर ने हमारे कर्मों के अनुसार ही हमें कर्मफल दिया। हम केवल कर्म करने में स्वतंत्र हैं, कारण ईश्वर ने हमें शरीर, मन, बुद्धि, विवेक, बल सभी कुछ दे दिया और कहा, कर्म करो। अच्छे-बुरे का निर्धारण अपने बुद्धि विवेक से करो। इस प्रकार हम केवल कर्म करने में स्वतंत्र हैं लेकिन फल पाने में परतंत्र हैं याने ईश्वराधीन हैं। लेकिन ईश्वर भी आपको कर्मफल आपके कर्मों के अनुसार ही देता है। अतः मेरा भाग्य या तकदीर निःसंदेह रूप से मेरा कर्मफल ही है।

अब हम चर्चा करेंगे कि प्रभु कृपा क्या है? प्रभु ने हमें स्वस्थ एवं सुन्दर शरीर दे दिया। हमें मन, बुद्धि, विवेक, वाणी, विभिन्न इन्द्रियाँ आदि दे दीं। काम करने के लिये जवानी का जोश दे दिया। इतना ही नहीं किया। हमें रहने के लिये पृथ्वी दे दी, श्वांस लेने के लिय हवा दे दिया। प्रकाश के लिये सूर्य दे दिया। शीतलता के लिये चांद दे दिया। जल के लिये नदी, तालाब, कुयें दे दिया। वर्षा दे दी ताकि हम मेहनत करके अन्न पैदा कर सकें। पृथ्वी पर केवल इंसान ही पैदा नहीं किया। विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु भी हैं। जल (समुद्र) में भी अनेकों प्रकार के जल-जन्तु हैं। भूमि पर पेड़-पौधे, पहाड़ आदि भी दे दिये। ये सारी सुविधाएँ प्रभु प्रदत्त हैं। इन चीजों को देने में प्रभु ने किसी के साथ भेदभाव नहीं किया। चाहे राजा हो या रंक, गरीब हो या अमीर, सबको सूर्य का प्रकाश, हवा, चन्द्र-प्रकाश, गंगा जल आदि

समान रूप से मिलते हैं। प्रभु कृपा से इसी प्रकार की अन्य चीजें भी मिलीं। प्रभु प्रदत्त जो भी चीजें उपलब्ध हैं सभी के लिये समान रूप से उपलब्ध हैं। उसमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं। भेद-भाव, जो भी है मानव निर्मित है। जैसे जमीन को टुकड़ों में बाँट लिया। उसे अलग-अलग देशों की या व्यक्तिगत सम्पत्ति मान लिया। मानव निर्मित बँटवारे से ईश्वर का कोई लेना देना नहीं।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि इंसान आज तक कोई नई चीज पैदा नहीं कर सका। हम केवल रूपान्तरण करते हैं। विज्ञान भी कहता है विज्ञान किसी नई चीज को न तो पैदा कर सकता है और न नष्ट। न विज्ञान पृथ्वी बना देगा, न इंसान बना देगा, न सूर्य-चन्द्रमा, हवा जल बना देगा। आज तक तो नहीं बन पाया। अरे, एक चींटी तक को विज्ञान नहीं बना सकता। हम विज्ञान की उपलब्धियों पर गर्व तो कर सकते हैं, करना भी चाहिए लेकिन विज्ञान की अपनी सीमाएँ हैं। वह निर्जीव में प्राण नहीं दे सकता। उसने मानव के आकार का रोबोट बनाया तो क्या उसमें बुद्धि, विवेक या प्राण दे सका? जब तक बिजली या बैटरी है तभी तक चलेगा। टेस्ट-ट्यूब बेबी भी बनाया तो वीर्य एवं शुक्र भी स्त्री-पुरुष का लिया तथा उसका विकास भी किसी महिला के गर्भ में ही कराया। कोई बाहर प्रयोगशाला नहीं बना सका जहाँ इस टेस्ट-ट्यूब बेबी को गर्भावस्था की तरह रख सकें। विज्ञान ने कितने ही उपकरण बना लिये लेकिन आज तक ऐसा उपकरण विकसित नहीं हुआ कि हमारे मन में क्या भाव उठ रहे हैं उसको बता सके। हमारी आँख चली जाय तो उसकी जगह या तो नकली पत्थर या अन्य धातु की आँख लगा देगा या किसी दूसरे मनुष्य की आँख लगा देगा। मानव निर्मित आँख नहीं लगा सकता। आँख को छोड़िये हमारे हाथ-पैर के नाखून भी निकल जाएँ तो उसकी जगह असली नहीं लगा सकता, नकली भले ही लगा दे। इस प्रकार विज्ञान न तो कोई नई चीज का निर्माण कर सकता है और न किसी चीज को नष्ट कर सकता है। विज्ञान केवल रूपान्तरण कर सकता है। मूल चीजों का निर्माण केवल प्रभु ही कर सकते हैं। अतः प्रभु कृपा का अर्थ यह निकला कि वह सचमुच समदर्शी है। किसी के साथ कोई भेद-भाव नहीं करता। हमें वह फल देता है तो हमारे कर्मों के अनुसार देता है, मनमानी नहीं करता।

इसी चर्चा में एक और चर्चा करना आवश्यक है। ईश्वर के अस्तित्व के बारे में। कुछ लोग भले ही अपने को आस्तिक कहें या नास्तिक। लेकिन कोई पूछे कि पृथ्वी, जल, हवा, सूर्य, ब्रह्माण्ड आदि का निर्माण कैसे हुआ। इसका निर्माता अवश्य कोई होगा। दुनिया के महानतम वैज्ञानिक एलबर्ट आन्सटीन से जब किसी ने पूछा कि आप ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं या नहीं? तो उन्होंने जवाब में कहा कि सारे ब्रह्माण्ड में एक सिस्टम है जैसे समय पर सूर्य का उगना एवं अस्त होना, पृथ्वी का निश्चित धुरी पर घूमना तथा निश्चित गति से चलना। चाँद का नित्य घटना बढ़ना आदि। चूँकि ब्रह्माण्ड में एक सिस्टम है तो इस सिस्टम को बनाने वाला जरूर कोई होगा। बस उसी को आप गाड, ईश्वर, प्रभु, अल्लाह आदि जो भी नाम देना चाहें, दे दें। धर्म-सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज ने भी कहा था कि अगर जंगल को बगीचा बनाना है तो कोई माली अवश्य होगा। चूँकि दुनिया में सुन्दरता है तो अवश्य ही इसका निर्माता कोई होगा। बस, वही ईश्वर है। अतः ईश्वर का अस्तित्व निर्विवाद है। कोई अस्तित्व पर विवाद करे तो विवाद में नहीं पड़ना ही अच्छा है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है? अतः ईश्वर के अस्तित्व के बारे में किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

ईश्वर के एवं मानव के स्वभाव के बारे में समय-समय पर संत जनों ने जो विचार व्यक्त किये हैं उन्हें उद्धृत करना चाहूँगा।

मानव का स्वभाव है अपने दोषों के प्रति अनभिज्ञ रहना। अतः संतों ने कहा कि अपने दोषों से अनभिज्ञ रहने से बड़ा प्रमाद इस संसार में और कोई नहीं हो सकता। मुक्ति माँगने से नहीं मिलती। शुद्ध हो जाओ जैसे अनासक्त, स्थितप्रज्ञ, अपरिग्रही, समता का भाव अपना लो तो मुक्ति अपने आप मिलेगी। मुक्ति कोई प्रभु प्रसाद नहीं है, यह तो शुद्ध होने का प्रतिफल है। जैसे लालटेन के शीशे में धुँआ लगा हो तो भीतर का प्रकाश बाहर नहीं आयगा। लेकिन धुँआ पोंछते ही भीतर का प्रकाश अपने आप बाहर आ जायगा। भव-बन्धन से छूटने का अर्थ है कुसंस्कारों, कुविचारों एवं कुकर्मों से छुटकारा पाना। भगवान अपने गुणों को दूसरे के दोषों को तथा जो दिया है उसे भूल जाते हैं। मानव उन्हीं को याद करके जीता है।

भगवान ने मनुष्य को भले बुरे कर्म करने की स्वतंत्रता इसलिये प्रदान की है कि वह अपने विवेक को विकसित करके भले-बुरे का अन्तर सीखे

और दुष्परिणामों के शोक संतापों से बचने एवं सत् परिणामों का आनन्द लेने के लिये स्वतः अपना पथ-निर्माण करने में समर्थ हो। मनुष्य को हमेशा याद रखना चाहिये कि दुःख की उत्पत्ति पाप से होती है। जीवन की ऊँचाई कमजोरियों को छुपाने में नहीं है, उन्हें दूर करने में है। सुधरने के लिये स्वयं ही प्रयास, प्रयत्न तथा संघर्ष करना पड़ेगा। किसी और के प्रयास या प्रयत्न से हम नहीं सुधर सकते जब तक हम सुधरना नहीं चाहेंगे। दूसरों को दुःख देकर सुख प्राप्त करना उसी प्रकार गलत है जैसे गड्ढे को पाटने के लिये खाईं खोदना। हमें यह स्मरण रखना होगा कि सच्चा प्रेम स्तुति से प्रकट नहीं होता, सेवा से प्रकट होता है। हमें यह मानकर चलना है कि ईश्वर मेरे लिये नहीं है, ईश्वर मेरे साथ है। हमें अपने प्रभु को अपने सत्कर्मों में खोजना पड़ेगा।

भक्त भी चार प्रकार के होते हैं। (१) मुसीबत आने पर याद करते हैं, (२) कोई लाभ पाने के लिये भगवान से मिन्नत करते हैं, (३) जिज्ञासु भक्त भगवान को जानने के लिये सत्संग करते हैं, (४) समर्पित भक्त तो भगवान को मानते हैं। वे जानते हैं कि भगवान कुल, गोत्र, जाति, धर्म नहीं देखते, सिर्फ भाव देखते हैं। उनका भाव यही रहता है कि मेरी गति, मति और रति आपके चरणों में लगी रहे। वे इष्ट की साधना तो करते हैं लेकिन उनसे किसी वस्तु की याचना नहीं करते। उनका मानना होता है कि पूजा भाव दशा है, क्रिया नहीं। उपासना में गहराई आवश्यक है, विस्तार नहीं। सार्थक पूजा वही है जो प्रार्थी को पदार्थ से तोड़े एवं उपास्य से जोड़े। पूजा का प्राण तो तन्मयता है। महत्ता साधन की नहीं, श्रद्धा की है। लोभ एवं भय पर आधारित आराधना आत्म प्रवंचना है। कंचन, कामिनी एवं कीर्ति की कामना उपासना में बाधक है। ममता, मद, मान से मुक्त मन उपासना में साधक है। वासना एवं उपासना का सहअस्तित्व संभव नहीं। हमारी उपासना जितनी बढ़ती जाएगी हमारा गंतव्य भी उसी अनुपात में श्रेष्ठ होता जायगा। भोग की इच्छा ही बन्धन है एवं उसका त्याग ही मोक्ष है। हमें हमेशा स्मरण रखना होगा कि कर्म-जीवन का राजमार्ग सदाचरण है। हमारा गुण एवं गौरव भी तभी तक रहता है जब तक हम दूसरों से याचना नहीं करते। आप यह मान कर चलें कि बहुत आनन्द है इस जगत में। बहुत आलोक एवं सौन्दर्य है। काश! हमारे पास उसे देखने वाली आँखें और ग्रहण करने वाला हृदय हो।

आप विश्वास करें यह सृष्टि ईश्वर की पुण्यकृति है, हमें इसका सम्मान करना है। मरने पर जो छूट जायगा हम उसे पाने का प्रयास करते हैं, जो साथ जायगा उसे पाने या करने का प्रयास नहीं करते।

इस लेख में मैंने भाग्य, प्रभुकृपा, मानव एवं प्रभु के स्वभाव पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। मानव अपनी कमजोरियों को दूर कर अच्छे संस्कार अपने में आरोपित करे तो उसके लिये भी मानव से देव बनना संभव है। जैसे बुद्ध मानव से बुद्धावतार हो गये। क्राइस्ट, मोहम्मद ईसा, गुरु नानक देव, महावीर आदि भी अपने-अपने सम्प्रदाय के इष्ट हो गये।



<u>अनमोल वचन</u>

सत्य से कमाया 'धन' हर प्रकार का सुख देता है।
छल व कपट से कमाया धन दुःख ही दुःख देता है।

<u>इस तरह....</u>

इस तरह से न कमाओ कि पाप हो जाये।
इस तरह से न खाओं कि मर्ज हो जाये।
इस तरह से न बोलो कि कष्ट हो जाये।
इस तरह से न चलो कि देर हो जाये।
इस तरह से न सोचो कि चिन्ता हो जाये।

<u>धन से</u>

धन से पुस्तक मिलती है किन्तु ज्ञान नहीं।
धन से आभूषण मिलता है किन्तु रूप नहीं।
धन से सुख मिलता है किन्तु आनन्द नहीं।
धन से साथी मिलता है किन्तु सच्चे मित्र नहीं।
धन से भोजन मिलता है किन्तु भूख नहीं।
धन से दवा मिलती है किन्तु स्वास्थ्य नहीं।
धन से एकान्त मिलता है किन्तु शान्ति नहीं।
धन से बिस्तर मिलता है किन्तु नींद नहीं।

महान् कार्य सभी उम्र में संभव है

– दीनानाथ झुनझुनवाला

हमारा जीवन कुछ करने के लिये है, केवल मरने के लिए नहीं है। अक्सर यह कहते हुए सुना गया है कि इतनी छोटी या इतनी बड़ी उम्र में यह काम करना संभव है! आदमी संकल्प कर ले तो सभी उम्र में सभी काम संभव है। एक बार महान नाटककार पं. लक्ष्मीनारायण जी मिश्र ने एक बड़े महत्व की बात कही कि आदमी में जब तक संतान उत्पन्न करने की क्षमता है, तभी तक उसमें सृजन की क्षमता है। श्री मिश्र जी के इस कथन का थोड़ा विश्लेषण करना चाहूँगा। आदमी की संतान उत्पन्न करने की क्षमता लगभग १५-१६ वर्ष से प्रारम्भ हो जाती है लेकिन वृद्धावस्था में किस उम्र तक संतान उत्पन्न कर सकता है, इसकी कोई अधिकतम उम्र नहीं है। यह उसके स्वास्थ्य, खान-पान, आचार-विचार आदि पर निर्भर करता है। कारण अस्सी-नब्बे वर्ष की उम्र में भी संतान उत्पन्न करने की क्षमता देखी गई है। हमारे देश में तो साठ वर्ष की उम्र के बाद कोई पुरुष दूसरा विवाह कर ले तो वह चर्चा का विषय हो जाता है। समाज उसे एक अजीब उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगता है। जैसे उसने कोई बड़ा अपराध कर लिया हो। बढ़ी उम्र में विवाह केवल काम-तृप्ति के लिये नहीं किया जाता, एक सहधर्मिणी चाहिये ताकि अपने मन की बात कह सकें। समय पर भोजन मिल जाय तथा बीमार पड़ने पर सेवा हो सके। विदेशों में वृद्धावस्था में विवाह करना याने सौ वर्ष की उम्र तक बिवाह करने पर भी व्यक्ति चर्चित नहीं होता और न समाज उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। इस प्रकरण से यह कहना चाहता हूँ कि पुरुष की संतान उत्पन्न करने की क्षमता पूरी उम्र बनी रहती है याने उसमें सृजन शक्ति कभी मरती नहीं है। हाँ, महिलाओं के सम्बन्ध में थोड़ा

सोचना पड़ेगा कारण महिलायें मासिक धर्म होने के पहले एवं मासिक धर्म बंद होने के बाद संतान उत्पन्न नहीं कर सकतीं। महिलाओं का मासिक धर्म ११-१२ वर्ष की उम्र से प्रारम्भ हो जाता है जो आगे ४७-४८ वर्ष की उम्र तक चलता है। याने महिलायें ४८ वर्ष की उम्र तक ही संतान पैदा कर सकती हैं। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि महिलायें ४८ वर्ष की उम्र के बाद भी नया सृजन कर सकती हैं भले ही उसमें संतान सृजन की क्षमता न रह जाय। अतः श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र जी का कथन आंशिक रूप से सत्य माना जा सकता है। हाँ, यह बात अवश्य सत्य है कि प्रायः महान कार्य जवानी की उम्र में ही हुये हैं लेकिन केवल जवानी में ही होना संभव है, यह सत्य नहीं है। मैं नीचे कुछ महान लोगों के नाम एवं महान कार्य का उल्लेख करूँगा जिन्होंने अल्पायु पाई फिर भी महान कार्य करना संभव हो सका तथा जिन्होंने वृद्धावस्था में जाकर महान कार्य किये। मेरी अल्पायु से तात्पर्य है कि चालीस वर्ष से नीचे की आयु एवं वृद्धावस्था से तात्पर्य है साठ वर्ष से अधिक की आयु।

आदि गुरु शंकराचार्य ने मात्र ३२ वर्ष की आयु पाई। क्राइस्ट ने मात्र ३३ वर्ष की, स्वामी विवेकानन्द ने ३९ वर्ष की, स्वामी रामतीर्थ ने ३३ वर्ष की, रामानुजन ने ३३ वर्ष की, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ३४ वर्ष की। वहीं तुलसीदास ने आयु तो पाई १२५ वर्ष की, लेकिन महान कार्य प्रारम्भ किया ७८ वर्ष की उम्र में। वहीं प्रभुपाद स्वामी ने भी उम्र तो पाई ८१ वर्ष की लेकिन महान कार्य का शुभारम्भ किया ६८ वर्ष की उम्र में। नीचे अल्पायु में एवं दीर्घायु में जो महान कार्य इन लोगों ने किये है, उनका उल्लेख करना चाहूँगा।

आदि गुरु शंकराचार्य :- इनका जन्म दक्षिण भारत में बारहवीं शताब्दी में हुआ। इनके बारे में पंडित नेहरू ने लिखा- 'दक्षिण भारत में एक अद्भुत आदमी ने जन्म लिया। वह एक अपूर्व प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह हिन्दू धर्म के या हिन्दू धर्म के एक विशेष बौद्धिक रूप के, जिसे शैव मत कहते हैं, पुनरुद्धार में लग गया। वह अपनी बुद्धि एवं तर्क के बदल पर बौद्ध धर्म के विरुद्ध लड़ा। बौद्ध संघ की तरह उसने भी सन्यासियों का संघ बनाया, जिसमें सब जाति के लोग शामिल हो सकते थे। उसने सन्यासियों के चार केन्द्र भारत के चारों कोनों (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम) में स्थापित किये।

उसने सारे भारत की पैदल यात्रा की एवं जहाँ भी गया, सफल हुआ। वह एक विजेता के रूप में बनारस भी आया। अंत में केदारनाथ गया जहाँ उनका ३२ वर्ष की उम्र में देहावसान हो गया। शंकर के भाष्यों, ग्रंथों और तर्कों से सारे देश में एक बौद्धिक हलचल सी मच गई। शंकर के छोटे से किन्तु कठोर परिश्रम के जीवन से दूसरी बात यह साबित होती है कि उसने सारे भारत के चारों कोनों में पीठों की स्थापना से सांस्कृतिक एकता स्थापित की। उसके आन्दोलन के थोड़े ही समय में महान सफलता यह भी जाहिर करती है कि बौद्धिक और सांस्कृतिक धारायें कितनी तेजी से देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच सकती हैं। यह उस समय संभव हुआ जब यात्रा के लिये न मोटर गाड़ियाँ थी, न रेल थी और न हवाई जहाज थे। अपनी बात को बड़े समूह में कहने के लिये लाउड-स्पीकर भी नहीं थे और न ग्रंथों को छापने के लिये कम्प्यूटर एवं प्रेस थे। हम उनकी अल्पायु में महान कार्य की केवल कल्पना कर सकते हैं यों देखने में उनके कार्य असंभव प्रतीत होते हैं।

शंकर ने मात्र १६ वर्ष की आयु में सबसे कठिन ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' की व्याख्या लिखनी प्रारम्भ कर दी थी। भारतीय धर्म को आत्म-निर्भर बनाने के लिये आचार्य शंकर ने स्तोत्र, प्रकरण और तंत्र आदि विधाओं में विविध ग्रंथों की रचना की। उनके प्रतिपादनों में भारतीय धर्म सम्प्रदाय का जो रूप उजागर हुआ है उसे अद्वैत वेदान्त कहते हैं। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन मानते थे कि अद्वैत वेदान्त दर्शन शास्त्र का शिखर है। बुद्धि की कोई भी क्षमता इससे आगे नहीं जा सकती। अपने महान कार्य का सम्पादन करने के लिये आचार्य शंकर दिग्विजय यात्रा पर निकल पड़े। हिमालय से कन्याकुमारी और कश्मीर से असम के कामरूप कामाख्या तक पैदल भ्रमण किया। इन महान यात्राओं में उन्होंने सभी समकालीन प्रकांड विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। ब्रह्मसूत्र, ग्यारह प्रमुख उपनिषदों और भगवद्गीता पर भाष्य लिखकर आचार्य शंकर अमर हो गये। उनके प्रख्यात ग्रंथ विवेक चूड़ामणि तथा अपरोक्षानुभूति से उनके अगाध ज्ञान एवं अपरिमित कल्पना शक्ति का पता चलता है।

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है- 'आचार्य शंकर एक महान तत्वज्ञानी थे। उन्होंने स्पष्ट किया कि बौद्ध धर्म का सारतत्व वेदान्त दर्शन से भिन्न नहीं

है। उनके अनुयायी उन्हें शिव का अवतार मानते हैं। आचार्य शंकर ने जितने महान कार्य इस अल्पायु में किये, वे अविश्वसनीय हैं किन्तु सत्य हैं।'

ईसामसीह - हिन्दी में ईसामसीह उन्हें कहते हैं जिन्हें हम अंग्रेजी में क्राइस्ट कहते हैं। क्राइस्ट ही क्रिश्चियन धर्म के प्रवर्तक हैं। इस धर्म को मानने वालों की संख्या दुनिया में सर्वाधिक है। क्राइस्ट के उपदेश उनके 'बाइबिल' नाम के धर्मग्रंथ में संग्रहीत हैं। आज से दो हजार वर्ष पूर्व क्राइस्ट का जन्म पच्चीस दिसम्बर को उनकी माता मरियम की कोख से हुआ। प्रभु प्रेरणा से उत्पन्न होने के कारण ईश पुत्र कहलाये। इनके पिता पेशे से बढ़ई थे। ईसामसीह ने तीस वर्ष तक का जीवन अपने माता-पिता के साथ बिताया और उसके बाद निकल पड़े घर से। तीन वर्ष तक मानव के कल्याण हेतु उपदेश एवं आदेश दिये। तैतीस वर्ष की आयु तक वे मानव कल्याण का संदेश देते, समाज में व्याप्त बुराइयों का विरोध करते रहे तथा धर्म के अनुपालन में जो विसंगतियाँ थीं, उनके विरुद्ध आवाज उठाते रहे। ईसामसीह ने कहा- 'पैसे वालों का स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं हो सकता। सूई के छेद से ऊँट भले ही निकल जाय, धनवान व्यक्ति प्रभु के राज्य में नहीं पहुँच सकता। अपनी सारी दौलत बाँटकर, अकिंचन बनकर मेरे साथ आओ।' ऐसी बातें सुनकर पैसे वाले लोग ईसा के विरोधी हो गये। पुरानी गलत प्रथाओं का भी ईसा ने विरोध किया। सत्य के लिये वे किसी भी कष्ट को सहने के लिये तैयार थे। नतीजा हुआ कि दिन-प्रतिदिन उनका विरोध बढ़ने लगा और इन विरोधियों ने मिलकर उनको शूली पर लटका दिया। जिस दिन शूली पर लटकाया गया उसे पुण्य शुक्रवार या 'गुड-फ्राइडे' कहा जाता है। यह महान आत्मा मात्र तैंतीस वर्ष की आयु पाकर अमर हो गई। आज इनके अनुयायियों की संख्या करोड़ों में है जो सारी दुनिया में फैली है।

ईसा को शूली पर चढ़ने में कितना कष्ट हुआ होगा लेकिन इस महान आत्मा के मन में प्रेम, आत्मीयता और करुणा की भावना भरी थी। अंतिम समय में उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की- 'हे पिता, इन्हें क्षमा करें क्योंकि ये जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।'

ईसा मानवता के आदर्श प्रचारक, सच्चे बन्धु और मार्गदर्शक थे। वे दुर्लभ गुणों के भंडार थे। उनमें असीम धैर्य एवं विनम्रतापूर्वक कष्टों को सहन करने की अपार क्षमता थी। उनकी करुणा ने दरिद्रों के घरों को पवित्र कर

दिया। गिरे एवं पददलित लोगों के प्रति उनके प्रेम ने सारे संसार को परोपकार एवं सहानुभूति के अनगिनत कार्यों से भर दिया। अकथनीय यातनाओं के मध्य उनका अपरिमित धैर्य हमारे दुःखों के प्याले को मधुर बना देता है।

महान गणितज्ञ रामानुजन - इन्होंने भी मात्र ३३ वर्ष की आयु पाई। २२ दिसम्बर १८८७ को जन्में एवं २६ अप्रैल १९२० को दिवंगत हो गये। इनके स्कूल के प्रधानाचार्य ने इनके बारे में कहा- 'उनके आकलन के लिये १०० में से १०० अंक भी निहायत अपर्याप्त है।

गणित के महान विद्वान रामानुजन के जीवन में एक ऐसा भी समय आया जब वे गरीबी के कारण लिखने के लिये कागज भी खरीदने में असमर्थ थे। वे स्लेट पर गणित के प्रश्न हल करते और उसे मिटा देते। ऐसा बराबर करने से उनके हाथ की चमड़ी काली एवं कठोर हो गई, परन्तु वे अपनी साधना में दिन रात लगे रहे। आज वे विश्व के महान गणितज्ञों में गिने जाते हैं।

बचपन में जिद्दी स्वभाव होने के कारण जो काम उन्हें नहीं करना होता, उसे नहीं करते। कक्षा में बराबर फेल होते गये। शरीर से कमजोर थे। मात्र १७ से २० वर्ष की आयु के गणितीय कार्य का पहला संकलन एक नोट बुक के रूप में प्रकाशित हुआ। मद्रास पोर्ट ट्रस्ट में तीस रूपये महीने की नौकरी की। वहाँ इनको लोग सनकी जिनियस समझने लगे। १९११ में रामानुजन का पहला शोधपत्र जर्नल आफ इण्डियन मैथमेटिक्स सोसायटी में प्रकाशित हुआ। उनके काम के बारे में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अग्रणी गणितज्ञों को लिखा गया। प्रोफेसर हार्डी ने देखा तो समझ गये कि इनके काम में दम है। वे १९१४ में इंग्लैण्ड गये और प्रो० हार्डी के साथ काम किया। पूरा कैम्ब्रिज रामानुजन को भारत के गणित जिनियस के रूप में जानने लगा। १९१७ में प्रो० हार्डी के प्रयास से रामानुजन रायल सोसायटी के सदस्य बने तथा ट्रिनिटी के सदस्य बनने में सफलता प्राप्त की। भारत के अखबारों में रामानुजन के बारे में काफी कुछ छपा। मार्च १९१९ में वे भारत लौटे। मद्रास विश्वविद्यालय में उन्हें प्राध्यापक का पद दिया गया। इनकी सेहत बिगड़ती गई। इन्हें टी.बी. हो गई और इनकी बीमारी का असर इनके दिमाग पर भी पड़ने लगा। लेकिन इस महान गणितज्ञ ने अपने गणित के कार्य को मृत्यु के चार दिन पहले तक नहीं छोड़ा। इनके अंतिम समय

के नोट प्रो० हार्डी के पास नहीं पहुँच सके लेकिन कैम्ब्रिज की लाइब्रेरी में वे पाये गये। वे अपनी खराब सेहत को ठीक नहीं कर पाये और यह महान गणितज्ञ मात्र तैंतीस वर्ष की अवस्था में मृत्यु का आलिंगन कर बैठा। मृत्यु के समय रामानुजन की ख्याति चरम पर थी। नोबुल पुरस्कार विजेता भारतीय भौतिकशास्त्री एस. चन्द्रशेखर उस जमाने के बारे में कहते हैं, 'तब हमें गाँधी, टैगोर, नेहरू एवं रामानुजन पर गर्व था।

स्वामी विवेकानन्द - स्वामी जी ने अपने सनातन धर्म को देश की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रखा, विदेशों तक याने सारी दुनिया तक पहुँचा दिया। अमेरिका के शिकागो शहर में आयोजित विश्व धर्म महासभा में उन्होंने अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में जैसे ही मेरे अमेरिका निवासी बहनों एवं भाइयों कहकर सम्बोधन का प्रारम्भ किया तो सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। उस समय उनकी उम्र मात्र तीस वर्ष की थी। अमेरिका में जब स्वामी जी का नाम हुआ तो अपने देश में भी उनकी पहचान बन गयी। शास्त्रों में संन्यासियों के लिये समुद्र यात्रा वर्जित है लेकिन स्वामी जी ने अपने को शास्त्रों की रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों में कभी नहीं बांधा। उनका दृष्टिकोण व्यापक था एवं धर्म को उसकी गहराइयों एवं ऊँचाइयों तक उन्होंने आत्मसात् कर लिया था।

विवेकानन्द का जन्म बंगाल में १२ जनवरी १८६३ को हुआ तथा वे ८ जुलाई १९०२ को मात्र ३९ वर्ष की आयु में दिवंगत हो गये। इस छोटी सी आयु में हमारे देश का यह ब्रह्मचारी सोने की तरह तप कर खरा उतरा। प्रारम्भ में इनका नाम 'नरेन्द्र' रखा गया लेकिन इनकी माता इनको 'विश्वेश्वर' नाम से पुकारती थी। कारण उन्हें विश्वास था कि उन्हीं की कृपा से यह पुत्र हमें प्रसाद स्वरूप प्राप्त हुआ है। नरेन्द्र के घर में पूजा-पाठ, कथावार्ता, चलती ही रहती थी। जिस कथा को नरेन्द्र एक बार सुन लेते इन्हें कंठस्थ हो जाती। बचपन में खेल के प्रति रुचि ज्यादा थी। कालेज में नरेन्द्र ने इतिहास, साहित्य, दर्शन इत्यादि का गहन अध्ययन किया। अपने विद्यार्थी जीवन में इनको ईश्वर का स्वरूप जानने की इच्छा हुई तो अध्यापक ने कहा उनका स्वरूप जानने के लिये तुम्हें संसार से सम्बन्ध विच्छेद करना होगा तथा ईश्वर भक्ति में लीन होना होगा। इन्होंने ईश्वर का दर्शन करने का दृढ़ संकल्प ले लिया। लेकिन उन्हें ईश्वर का दर्शन कराने वाला कोई नहीं

मिला। एक दिन उन्हें ऐसे गुरु मिले जो उन्हें ईश्वर का दर्शन करा सकें। वे गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस थे। दक्षिणेश्वर में पहली भेंट में ही परमहंस जी बोले- 'नरेन्द्र तू साधारण मनुष्य नहीं है। तुझे परमात्मा ने मानव कल्याण हेतु पृथ्वी पर अवतरित किया है। तू भगवान का वरद पुत्र है।' एक दिन नरेन्द्र नाथ ने परमहंस जी से पूछ लिया, 'आपने ईश्वर के दर्शन किये हैं?' परमहंस जी हँसकर बोले, 'जैसे मैं तेरे से बात करता हूँ उसी तरह मैं ईश्वर से बात करता हूँ।' बस, उसी समय नरेन्द्र ने परमंहस को अपना गुरु मान लिया और उन्हें विश्वास हो गया कि एक दिन मुझे परमात्मा के दर्शन अवश्य होंगे। वे अब नरेन्द्रनाथ से स्वामी विवेकानन्द हो गये।

उन्होंने पूरे देश का भ्रमण किया। अंत में कन्याकुमारी जाकर समुद्र पार एक शिला पर तीन दिन तीन रात तक ध्यान मग्न होकर बैठ गये। अपने भारत भ्रमण में उन्होंने देश की दुर्दशा देखी। ध्यानावस्था में माँ से प्रार्थना कर रहे थे कि कैसे देश का प्रत्येक व्यक्ति खुशहाल होगा। माँ ने आशीर्वाद दिया, जाओ और देशवासियों को जागृत करो ताकि देशवासी अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें। अपनी गरीबी स्वयं दूर करने का प्रयास करें। उन्होंने पूरे भारत में भ्रमण कर देशवासियों को जागृत किया। अपने सनातन धर्म को व्याख्यायित किया। भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, राजयोग पर प्रवचन किया। स्वामी जी की कंचन, कामिनी एवं कीर्ति पाने की लालसा समाप्त हो चुकी थी। संसार के राग द्वेष से मुक्त हो चुके थे। उनके आचरण एवं प्रवचन का इस देश पर गहरा असर पड़ा। विदेशों में भी जाकर अपने धर्म के मूल तत्वों को व्याख्यायित किया। अपने छोटे से जीवन काल में स्वामी विवेकानन्द जी का योगदान हमारे देश की अमूल्य धरोहर है। भारत की आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सिद्धान्तों का दर्शन स्वामी जी के जीवन में कर सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द जैसे महात्मा देश और काल की, जाति और वर्ण की, मत और सम्प्रदाय की सीमाओं में कभी नहीं बाँधते। वे तो घट-घट वासी उस अविनाशी को सर्वत्र देखते हैं। धर्म तत्व को जानने वाले ऐसे महात्मा अपनी चारित्रिक पवित्रता से अपने चतुर्दिक के वातावरण को भी पवित्र कर देते हैं।

वेदांत के साकार रूप स्वामी रामतीर्थ - इनका जन्म २२ अक्टूबर १८७३ को एवं निर्वाण १७ अक्टूबर १९०६ को हुआ। इनको केवल ३३ वर्ष की

आयु मिली। इतनी अल्पायु में यह प्रज्ञावान वेदांत का साक्षात् स्वरूप स्वामी राम परलोक गमन कर गया। स्वामी राम की मस्ती देखने लायक थी। निर्वाण के दिन दीपावली थी और वह भी सोमवती अमावस्या। गंगा स्नान को उतरे और गंगा के प्रवाह में पद्मासन की मुद्रा में प्रवाहित हो गये। दो बार ओम् ओम् शब्द का उच्चारण भी किया। ऐसे निर्भीक, आस्थावन, प्रज्ञावान एवं पूर्ण सन्यासी कहाँ देखने को मिलते हैं? वे मूर्तिमान वेदांत थे। वे शिशु जैसे सरल, पुष्प जैसे प्रसन्न, सागर जैसे गंभीर और हिमालय जैसे उच्च एवं दृढ़ थे। वे जहाँ भी गये आनन्दामृत की वर्षा होने लगी। उनके सामने जड़ भी चेतन का चोला पहन लेता था। उनका हृदय भक्ति, ज्ञान, वैराग्य से सम्पन्न था।

स्वामी रामतीर्थ का मूल नाम तीर्थराम था। वे निर्धन ब्राह्मण कुल में पैदा हुये। पढ़ाई में हमेशा सर्वोच्च अंक प्राप्त किया। इन पर भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। कई-कई दिनों तक भोजन नहीं मिलने पर भी इनके मुख मंडल की आभा देखने लायक थी। वे अपने प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते थे। वे गणित के अध्यापक बनना चाहते थे और उनकी नियुक्ति क्रिश्चियन कालेज में गणित के अध्यापक पद पर हो गई। उन्होंने सन्यास ग्रहण नहीं किया था लेकिन उनकी विरक्ति देखने लायक थी। उन्होंने कहा मुझे धन सम्पत्ति बटोरने में रुचि नहीं, स्त्री के आभूषण बनाने की कोई खुशी नहीं, मुझे मेज कुर्सी आदि सामान की भी आवश्यकता नहीं। मेरे लिये वृक्ष की छाया मकान का काम दे सकती है, राख मेरी पोशाक का, सूखी धरती मेरे बिस्तर का और दो चार घरों से माँगी हुई रोटियाँ मेरे भोजन का। अगर मुझे इतना मिल जाय तो मैं परम सुख मानूँगा। मैं तो साक्षात् आनन्द हूँ। जग को खोकर जगत्पिता को पा लेना ही जीवन की सार्थकता है।

तीर्थ राम की मुलाकात स्वामी विवेकानन्द से लाहौर में १८९७ में हुई। स्वामी विवेकानन्द ने पहचान लिया कि प्राध्यापक रामतीर्थ वेदान्त के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य करने की क्षमता से सम्पन्न हैं। रामतीर्थ ने सन्यास लेने का मन बना लिया और उत्तर काशी जाकर रामाश्रय जी से सन्यास ग्रहण किया। गुरु महाराज ने इनका नाम तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ कर दिया।

जापान में धर्म सम्मेलन हो रहा था। स्वामी राम ने जाने की स्वीकृति दे दी। टोक्यों में सीधे इंडो जापान क्लब नामक संस्था में गये तो पता लगा कि यहाँ धर्म सम्मेलन नहीं हो रहा है। स्वामी राम खूब हँसें। वे बोले- 'प्रकृति की चालें भी कैसी मजेदार होती है। राम को हिमालय के उस एकांत से निकाल कर संसार का पर्यटन कराने हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली। राम तो स्वयं धर्मों का विशाल सम्मेलन हैं। यदि टोक्यों (जापान) विश्व सम्मेलन नहीं करना चाहता तो राम तो अपना सम्मेलन करेगा ही।' टोक्यों में स्वामी राम की भेंट संस्कृत के प्रख्यात विद्वान प्राध्यापक श्री तकात्केसू से हुई। उन्होंने कहा- 'मैंने ऐसा महान व्यक्ति कहीं नहीं देखा। उनमें वेदांत और बौद्ध धर्म एक साथ एक स्थान पर एकत्र हुआ है। वे स्वयं धर्म हैं। वे एक सच्चे कवि एवं दार्शनिक हैं।'

स्वामी राम टोक्यों से सीधे अमेरिका पहुँचे। साथ में जापानी छात्र भी थे। छात्रों के पास पैसा नहीं था। जहाज में सफाई का काम कर अपना भरण-पोषण करते। स्वामी राम के पूछने पर छात्रों ने बताया कि हम अपने देश का धन विदेशों में जाकर क्यों खर्च करें। छात्रों के जवाब से स्वामी राम अत्यन्त प्रभावित हुये। स्वामी के पास पैसा नहीं था। किसी ने पूछ दिया, आपका निर्वाह कैसे होता है? स्वामी राम ने कहा, 'मैं प्राणी मात्र से प्रेम करता हूँ। मैं जब प्यासा होता हूँ तो कोई मुझे पानी पिला देता है और भूखा होता हूँ तो कोई रोटी का टुकड़ा दे देता है।' उसने फिर पूछा कि क्या अमेरिका में आपका कोई मित्र है? तो राम ने कहा, 'हाँ एक है और वह तुम हो।' स्वामी राम से प्रभावित होकर वह व्यक्ति राम का भक्त हो गया।

स्वामी जी ने अनेक विश्वविद्यालयों एंवं गिरजाघरों में व्याख्यान दिये। लोग उन्हें ईसा का अवतार मानकर सम्मान देते। उनका जीवन वेदांत की व्यावहारिक व्याख्या थी। वे चलते-फिरते तीर्थ थे— जहाँ भी जाते पाप एवं कलुष को धो डालते। वे तो घट-घट वासी अनिवाशी को सर्वत्र देखते थे। उपनिषद के उस वाक्य को स्वामी राम ने चरितार्थ किया- 'जो ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म ही होता है। हमारे देश की यह महान आत्मा मात्र ३३ वर्ष की अवस्था में परलोक गमन कर गई।'

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - आपका जन्म ९ सितम्बर १८५० को हुआ और आप मात्र ३४ वर्ष की आयु पाकर ५ फरवरी १८८५ को दिवंगत हो गये।

आपका नाम बाबू हरिश्चन्द्र था लेकिन आपके हिन्दी साहित्य के योगदान को देखते हुये आपको भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहा जाने लगा। आप हिन्दी साहित्य के इतिहास को प्रभावित करने वाले आधुनिक हिन्दी के जनक, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, यशस्वी कवि, उपन्यासकार, निबंधकार, कहानीकार, व्यंग्यकार, इतिहासवेत्ता, पुराणवेत्ता, बहुभाषाविद, अनुवादक, समाज सुधारक, चिन्तक, विचारक, महान राष्ट्रभक्त, प्रतिष्ठित शिक्षाविद, आदर्श आचार्य, अद्‌भुत संगठनकर्ता, उन्मुक्त दानी, अक्खड़ खांटी बनारसी थे। आपका जन्म काशी में हुआ और आपका निवास ठठेरी बाजार में भारतेन्दु भवन के नाम से आज भी विद्यमान है। आप क्वींस कालेज में पढ़े तथा वहाँ से संस्कृत, फारसी, अरबी, उर्दू की शिक्षा ग्रहण की। आपको देश की २०-२५ भाषाओं का ज्ञान था। अपने रचना संसार का शुभारम्भ विद्या सुन्दर नाटक का हिन्दी में अनुवाद करके किया जो सर्वत्र सराहा गया। तदनन्तर सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्रा राक्षस, धनंजय विजय, चन्द्रावली, कर्पूर मंजरी, भारत दुर्दशा, भारत जननी, पाखण्ड विडम्बन, वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति, अन्धेर नगरी, मृच्छकटिक आदि रचनायें की। आपकी रचनाओं की संख्या इतनी अधिक है कि सबका उल्लेख करना संभव नहीं। इस अल्पायु में इतना महान कार्य कैसे संभव हुआ, देखना है तो भारतेन्दु जी के जीवन में झांक कर देखा जा सकता है। भारतेन्दु जी का स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष बल था। उन्होंने १८६६ में चौखम्बा स्कूल की स्थापना की जो हरिश्चन्द्र स्कूल के नाम से विख्यात होकर आज भी चल रहा है जहाँ पाँच हजार विद्यार्थी शिशु कक्षा से लेकर पोस्ट ग्रेजुएट तक की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

इन्होंने देश के विभिन्न भागों की यात्रा की। अपनी बलिया यात्रा में उनका 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो' पर दिया गया व्याख्यान ऐतिहासिक दस्तावेज बन गया। भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी के युग प्रवर्तक महापुरुष थे। धार्मिक पाखण्ड के उजागर करने हेतु वैदिकी हिंसा न भवति प्रहसन में अपने वेद वाक्यों के उल्टे व मनमाने अर्थ द्वारा स्वयं की पिपासा शांत करने की प्रवृत्तियों का पर्दाफाश कर सच्ची तस्वीर सामने रख दी। धर्म का असली स्वरूप भुलाकर अपने विकारों को एक सच्चाई का बाना पहनाने वालों को खूब लताड़ा। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक द्वारा धर्म की शक्ति का परिचय कराने

में वे सफल हुये। उन्होंने अपने नाटकों में अज्ञान, रूढ़िवादिता एवं मोह पर करारा प्रहार किया। स्वार्थपरक शासकों की खोखली नीति का अंधेर नगरी में चित्रण किया तथा सुशासन की आवश्यकता पर बल दिया। हमारे समाज की कुरीतियाँ उन्हें कुदेरती रहतीं, अतः अनेक प्रहसन प्रसंग लिखकर धर्म के ठेकोदारों, धर्मगुरुओं को सावधान करते रहे। अपने जीवन में महान कार्य करने वाला साहित्य का यह महान साधक क्षय रोग से ग्रसित होकर मात्र ३४ वर्ष पाँच महीने की लघु वय प्राप्त कर नश्वर शरीर को त्याग कर अमर हो गया।

तुलसीदास जी - इनकी अमर कृति है रामचरित मानस। यों उन्होंने विनय पत्रिका, गीतावली आदि कई ग्रंथों का प्रणयन किया। जिस समय अपनी अमर कृति रामचरित मानस को लिखना उन्होंने प्रारम्भ किया उस समय उनकी उम्र ७७ वर्ष थी। यह ग्रंथ २ वर्ष ७ महीने २६ दिन में पूरी हुई। विनय पत्रिका, गीतावली आदि ग्रंथ तो रामचरित मानस के बाद ही लिखे गये याने ८० वर्ष की आयु के बाद भी उनका लेखन रुका नहीं।

संत तुलसीदास जी के पहले हमारे सभी धर्मग्रंथ संस्कृत भाषा में ही लिखे गये चाहे वेद हों, पुराण हों, महाभारत हो या श्रीमद्भागवत। वाल्मीकि जी द्वारा रचित रामायण भी संस्कृत भाषा में ही लिखा गया। संत तुलसीदास जी का प्रथम प्रयास था कि उन्होंने सारे धर्मशास्त्रों का निचोड़ हिन्दी की अवधी भाषा में इस प्रकार लिख दिया कि उसे अनपढ़ से लेकर विद्वान तक स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान, बूढ़े, देशी, विदेशी, स्वदेश में या परदेश में सभी समान रूप से गुनगुनाते हैं तथा उसमें वर्णित चरित्रों से प्रेरणा लेते हैं। आज कोई हिन्दू घर ऐसा नहीं मिलेगा जहाँ रामचरित मानस की पुस्तक न मिले। राम का चरित्र पहले वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा में लिखा लेकिन वही चरित्र जन-जन तक पहुँचा संत तुलसीदास जी के रामचरित मानस के माध्यम से। भाव एवं अर्थ को संस्कृत से हिन्दी में इस प्रकार उतार देना कि जन सामान्य समझ भी जाय तथा भावार्थ भी पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे, तुलसीदास जी इस कौशल में अतुलनीय एवं अनुपम हैं। धर्म-तत्त्व की सारी गहराइयों एवं ऊँचाईयों को लेकर बोलचाल की भाषा में पावन चरित्रों का वर्णन करना कितना कठिन है, इसकी कल्पना सहज में की जा सकती है।

तुलसीदास जी के रामचरित मानस पर कितने-कितने छात्रों ने शोध

करके डाक्टरेट प्राप्त की तथा अन्य अनेक शोधछात्र अभी भी शोध कर रहे हैं तथा अनन्त काल तक करते रहेंगे। कारण यह ग्रंथ तो शोध के विद्यार्थियों के लिये अक्षय भण्डार है। आप विभिन्न व्यासों को सुनिये तो वे भी एक ही चौपाई के अर्थ को भिन्न-भिन्न तरह से प्रस्तुत करते हैं। शायद इन अर्थों की कल्पना तुलसीदास जी ने भी नहीं की होगी। सारे इतिहास में तुलसीदास जी अकेले खड़े हैं कारण उनकी अमर रचनाओं की टक्कर का कोई साहित्य आज तक हिन्दी में उपलब्ध नहीं हो सका।

तुलसीदास ने ७७ वर्ष की आयु में रामचरित मानस लिखना प्रारम्भ किया। अक्सर लोग ७७ वर्ष की उम्र में अपने को बूढ़ा मानकर किसी काम लायक नहीं समझते, लेकिन इस उम्र में की गई रचना ने यह प्रमाणित कर दिया कि कोई भी कार्य संकल्पित होकर किया जाय तो उम्र कभी बाधक नहीं हो सकी।

तुलसीदास जी का बचपन से लेकर पूरा जीवन बड़े कष्ट में बीता। बचपन में माता-पिता का साया उठ गया। दर-दर भटकने लगे। शादी तो हुई लेकिन पत्नी के झिड़कने ने इनको कामी से निष्कामी बना दिया। काशी में तथा अन्यत्र वेद वेदांगों का गहन अध्ययन किया। इनकी बुद्धि प्रखर थी कि जो एक बार पढ़ लेते या सुन लेते वह कंठाग्र हो जाता। ये चित्रकूट गये और उन्हें भगवान राम के दर्शन हुये। भगवान शंकर ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम जाकर अयोध्या में रहो एवं हिन्दी काव्य रचना करो। फिर उन्होंने अयोध्या, चित्रकूट, काशी में रहकर अपने सभी अमर ग्रंथों का प्रणयन किया। सारे जीवन बिना माता-पिता, पत्नी एवं घरबार के भटकने वाला यह व्यक्ति कैसे यह अमर ग्रंथ दे गया, इस पर शोध होनी चाहिये। यह इस बात को दर्शाता है कि संकल्पित व्यक्ति को कोई भी परिस्थिति बाधा उत्पन्न कर विचलित नहीं कर सकती।

भगवान राम को इतना व्यापक करने का श्रेय किसी एक व्यक्ति को जाता है तो वे संत तुलसीदास जी ही हैं। भगवान राम की गाथा ऐसे चित्रित की गई है कि अपने जीवन में हम उसे धारण कर सकते हैं। परिवार में, समाज में तथा संकट के समय या अन्य परिस्थितियों में मर्यादा का निर्वाह कैसे किया गया, यह देखना हो तो रामचरित मानस में देखा जा सकता है। **स्वामी प्रभुपाद जी** - इन्होंने ही भगवान कृष्ण को विश्व पटल पर स्थापित

किया। विदेशों में भगवान कृष्ण के अनेकों मन्दिर बने। विदेशियों को कृष्ण भक्त बनाया। विदेशियों को कृष्ण ने इतना आकर्षित किया कि उन्होंने घर परिवार छोड़ दिया, भारतीय वेशभूषा पहन ली, तिलक लगाया तथा यज्ञोपवीत धारण कर लिया। कृष्ण के भजन गाते हैं तो नाचते गाते बजाते कृष्णमय हो जाते हैं। ऐसे कि विदेशियों की पत्नियों ने भी भारतीय साड़ी पहन ली। तिलक लगाया, सिन्दूर लगाया, चूड़ी पहनना तथा माला फेरना उनका स्वभाव हो गया। इनके बच्चे भी बचपन से ही कृष्ण के रंग में रंग गये। बाल मुड़ाकर, शिखा रखकर साधारण वेशभूषा में इन विदेशियों का समर्पण देखते ही बनता है। इनके सभी मंदिर बड़े भव्य, सुन्दर एवं सुव्यवस्थित हैं। इन्होंने पूरे श्रीमद्भागवत का अंग्रेजी में अनुवाद करके महान कार्य किया। गरीबी इतनी थी कि स्वयं लिखते एवं स्वयं ही टंकण करते। इसके अलावा भी अन्य अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। यह सब आश्चर्यजनक, ऐतिहासिक एवं अविश्वसनीय कार्य किसने किया एवं कैसे किया, यह जानना आवश्यक है। हम देखें कि एक मनुष्य में कितनी शक्ति निहित है। इन सारी उपलब्धियों का श्रेय स्वामी प्रभुपाद जी को है जिनका जीवन दर्शन एवं कार्य जानने लायक है।

स्वामी प्रभुपाद जी का जन्म ९ सितम्बर १८९६ को कलकत्ते में हुआ। इनका निर्वाण १४ नवम्बर १९७७ में वृन्दावन में हुआ। ये कुल ८१ वर्ष जीये लेकिन ८१ वर्षों के कार्य का लेखाजोखा अल्लादीन के चिराग की तरह अचरज भरा जादुई सा लगता है। इनके जन्म के समय ज्योतिष ने भविष्यवाणी की थी। 'यह बालक सत्तर वर्ष की उम्र का होगा तो समुद्र पार कर जायगा, धर्म धुरन्धर होगा और १०८ मन्दिर स्थापित करेगा।' भविष्यवाणी एकदम सच निकली कारण स्वामी प्रभुपाद जी ६८ वर्ष की आयु में विदेश गये। विदेश में केवल कृष्ण के मन्दिर ही स्थापित नहीं किये, विदेशियों को कृष्ण का दिवाना बना दिया। प्रभुपाद जी का मानना था कि कृष्ण रसिया थे, नटवर थे, योगेश्वर थे, माखनचोर थे, रणछोड़ थे याने क्या नहीं थे। ऐसा पूर्ण ब्रह्म, पूर्णावतार जैसा अन्य अवतार या महापुरुष सारे विश्व में आज तक पैदा ही नहीं हुआ। ऐसे दिव्यावतार का परिचय और स्थापना हमारे देश के बाहर भी होना चाहिए। यह पुनीत कार्य सर्वप्रथम स्वामी प्रभुपाद ने ही किया।

स्वामी प्रभुपाद के परिवार में कपड़े का व्यापार था। सब कुछ खो दिया और दीवाला निकल गया। उन्हें कृष्ण वचन पर विश्वास होने लगा कि जब मैं किसी के प्रति विशेष कृपामय बनता हूँ तो धीरे-धीरे उसकी सम्पत्ति ही हर लेता हूँ। जब उसके मित्र तथा परिवार वाले भी उसे अत्यन्त दीन-हीन समझ कर उसका परित्याग कर देते हैं तब उसके पास केवल कृष्ण ही रह जाते हैं। प्रभुपाद जी ने दिवाला निकलने पर तथा मित्र एवं परिवार से बिछुड़ने पर यही कहा- 'मेरी सबसे बड़ी आसक्ति का अंत हो गया और अब मैं श्री राधा कृष्ण के प्रति पूर्णतया अर्पित तथा शरणागत हूँ।'

नितान्त एकाकी जीवन होने पर वृन्दावन आकर बस गये। वे वृन्दावन को सर्वाधिक पवित्र स्थल मानते थे क्योंकि पाँच हजार वर्ष कृष्ण ने अवतार लेकर वहीं पर बाल्य काल की लीलाएँ की थीं। वृन्दावन में इनका मन खूब रमा। स्वामी प्रभुपाद जी ने अपने ८१ वर्ष के जीवन में लेखन, मंदिर स्थापन, विदेशियों को कृष्णमय बनाने तथा धर्मोपदेश के जो महान कार्य किये वे अविश्वसनीय अवश्य लगते हैं, लेकिन संभव हुए।

उपरोक्त चरित्रों के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि अल्पायु एवं दीर्घायु में भी महान् कार्य किये जा सकते हैं। मनुष्य इस भावना से ग्रसित होकर निश्चिन्त न बैठ जाय कि अभी आयु छोटी है या अब मैंने अवकाश ले लिया है, अतः किसी काम का नहीं रह गया। व्यक्ति काम करना चाहे तो चाहे जिस परिस्थिति में रहे, चाहे जिस अवस्था में रहे, चाहे जिस स्थान पर रहे, शुभ काम करना प्रारम्भ कर दे। शुभ समय आने की प्रतीक्षा न करे। बस, केवल संकल्पित होने की आवश्यकता है।



- ग्रंथों से अधिक ग्रंथों को जीने वाले संतों का चरित्र प्रभावित करता है।
- जन्म के साथ ही मृत्यु की यात्रा आरम्भ हो जाती है।
- जिसका तन घूमता है, मन स्थिर रहता है वह संत है।
- संत की चिन्ता का मूल स्वार्थ नहीं, परमार्थ है।
- संत का क्रोध भी कृपा का हेतु है।
- दुर्जन की प्रशंसा से संत का क्रोध अच्छा है।

योग अपनाइये - रोग भगाइये

- अनुपमा सिंह

हमारे यहाँ स्वस्थ व्यक्ति वही है. जो तन से निरोग हो एवं मन से निर्मल हो। तन की बीमारियां तो हम जानते हैं लेकिन मन की बीमारियां हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर आदि। योग में ही शक्ति है जो हमें तन से निरोग एवं मन से निर्मल कर दे। भगवान भी अपने मिलने की विधि बताते हैं और कहते हैं- 'निर्मल मन जन सो मोहिं पावा, मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।' योग कहते हैं जोड़ को। दो अपूर्ण चीजों का मिलन जब उनको पूर्णता प्रदान कर दे तो योग सिद्ध हो जाता है। जैसे आँख हो लेकिन प्रकाश न हो तो हम देख नहीं सकते। इसी प्रकार प्रकाश हो और आँख न हो तो भी हम नहीं देख सकते। इस प्रकार आँख एवं प्रकाश के मिलन ने ही दृष्टि को पूर्णता प्रदान की, वरना दोनों अधूरे हैं। यहाँ योग का अभिप्राय है क्रिया के साथ श्वासों का संचालन। क्रिया के साथ मन केन्द्रित हो जाय या स्थिर हो जाय तो यह महायोग है और यदि आत्मा के साथ परमात्मा का मिलन हो जाय तो यह परमयोग हो जायगा। योग प्राप्ति के दो ही साधन हमारे शास्त्रों ने बताये- अभ्यास और वैराग्य। अभ्यास याने नियमित अभ्यास। वैराग्य का अर्थ बताया विषयों से अनासक्ति ही वैराग्य है। साधारण रूप में वैराग्य का अर्थ है जो वस्तु तन-मन के लिये आवश्यक नहीं है उसका सेवन नहीं करना। जैसे पान, पान-मसाला, बीड़ी, सिगरेट, शराब, खैनी, तम्बाकू आदि शरीर के लिये आवश्यक नहीं। अतः इसका सेवन नहीं करना। दूसरा वैराग्य का अर्थ है आवश्यकता से अधिक का सेवन नहीं करना। जैसे अगर हमारा शरीर दो रोटी से जीवित रहता है तो तीन रोटी का भोजन नहीं करे। तीसरा वैराग्य का अर्थ है संयमित एवं

नियंत्रित भोग। अनियंत्रित एवं असंयमित भोग भी हमें वैराग्य वृत्ति से विमुख करता है। अतः योग की साधना के लिये अभ्यास में निरन्तरता होनी चाहिये एवं वैराग्य वृत्ति होनी चाहिए।

स्वामी रामदेव ने हमारी प्राचीन योग विद्या को ऐसा पुनर्जीवित किया कि इसकी मांग सारे देश में ही नहीं, विदेशों तक जा पहुँची। स्वामी जी ने मानव मात्र को आश्वस्त कर दिया कि- 'योग अपनाइये - रोग भगाइये।' यह बिना पैसे की दवा है जो आपको निरोग ही नहीं करता, आपको स्वस्थ भी करता है। जटिल, असाध्य समझी जाने वाली बीमारियों का इलाज भी योग विद्या में हैं। कैंसर, डायबिटीज जैसी बीमारियों से ग्रस्त रोगियों को तो ठीक किया ही है। एड्स जैसी प्राणघातक बीमारी से भी छुटकारा पाने के लिए प्रयोग चल रहे हैं और स्वामी रामदेव जी ने विश्वास व्यक्त किया है कि शीघ्र ही इसका भी इलाज संभव हो सकेगा। योग का प्रभाव है शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास करना। हमारे ऋषि-मुनि निरोग रहते थे एवं दीर्घ जीवी होते थे केवल योग के बल पर। आप बस एक बात जान लें, योग को जानने एवं मानने से भला होने वाला नहीं है। इसको धारण करना पड़ेगा और इसका नियमित अभ्यास आवश्यक है। स्वामी रामदेव स्वयं रोगग्रस्त हो गये थे लेकिन योग विद्या से अपनी बीमारी दूर कर ली और अब उनका संकल्प है कि इस विद्या को अपना कर मानव मात्र रोग मुक्त हो जाए। स्वामी जी बाल ब्रह्मचारी हैं। रोग मुक्त होने के लिये सहायक औषधि के रूप में आयुर्वेदिक औषधियों का भी सेवन करने की सलाह देते हैं। स्वामी जी का मानना है कि योग ऋषि क्रान्ति है एवं आयुर्वेद कृषि क्रान्ति है। आयुर्वेदिक औषधियों में ही वह शक्ति है जो आपको बिना विपरीत प्रभाव (साइड इफेक्ट) के निरोग कर दे।

योगशास्त्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं। उनका पहला सूत्र है- 'योगः चित्त वृत्ति निरोधः' याने चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। हमारे स्वामी रामदेव जी आधुनिक पतंजलि के रूप में मान्यता प्राप्त कर इस सोयी हुई विद्या को पुनर्जागृत कर रहे हैं। उन्हें तमाम विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों से उनको लोहा लेना पड़ रहा है। सम्पूर्ण राष्ट्र आज स्वामी जी के साथ खड़ा है। हमारे राजनेताओं को भी स्वामी जी के योगदान का महत्व समझ में आ रहा है। अतः कई प्रदेशों ने

तो उनको अपना ब्राण्ड एम्बेसेडर बना रखा है। स्वामी जी का आकर्षक व्यक्तित्व है, मनमोहक हँसी है एवं सम्मोहक वाणी है। उनके एक-एक शिविर में दस-दस हजार की संख्या में लोग योगाभ्यास करने आते हैं और योगाभ्यास करके स्वास्थ्य लाभ करते हैं।

. स्वामी रामदेव ने योग के प्रति इतनी चेतना जागृत कर दी कि हर घर में स्त्री-पुरुष योगाभ्यास करने लगे। सुबह शाम पार्कों में, अपने घर के बाहर बरामदे पर नाखून रगड़ते कपालभाँति, अग्निसार, अनुलोम; विलोम करते हुऐ लोग मिल जायेंगे। स्वामी जी ११० करोड़ की लागत से पातंजल योगपीठ की स्थापना कर रहे हैं। इस केन्द्र में योग एवं आयुर्वेद के संयोग से इलाज तो होगा ही, इन विषयों पर आधुनिक पद्धति से शोध एवं अनुसंधान भी होगा ताकि दुनिया को योग एवं आयुर्वेद के लाभ से आश्वस्त कर सकें।

महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में आसन को 'स्थिरं सुखमासनम्' अर्थात् जो स्थिर सुखदायी हो, शरीर की वह स्थिति आसन है। अपने अष्टांग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार को बहिरंग तथा धारणा, ध्यान, समाधि को अन्तरंग योग कहा गया है। योगवाशिष्ट के अनुसार मन को शांत करने का उपाय योग है। योगासनों को नियमित करने वाला व्यक्ति कभी रोगी एवं दुःखी नहीं हो सकता।

स्वामी रामदेव ने कहा कि अंग्रेजी दवाओं से रोग दबाये जा सकते हैं, पर समाप्त नहीं किये जा सकते। इसके विपरीत योग, प्राणायाम, एवं आयुर्वेदिक औषधियों के जरिये कैंसर एवं डायबिटीज जैसे रोगों को भी जड़ से समाप्त किया जा सकता है। तनाव एवं नकारात्मक सोच से भी बचने के लिये योग, प्राणायाम, आसन आवश्यक है। इस विधि को अपनाने से गरीब-अमीर सभी स्वस्थ एवं प्रसन्न रह सकते हैं। इस विद्या का देश, काल, सम्प्रदाय से कुछ लेना देना नहीं। चाहे किसी देश का प्राणी हो, भूत, वर्तमान एवं भविष्य कालखंड का हो, चाहे स्त्री हो या पुरुष, योग विद्या तो मनुष्य मात्र के लिये सर्वथा उपयोगी है। आपका स्वस्थ शरीर आपकी आत्मा का भवन है एवं बीमार शरीर आपकी आत्मा का कारागार है। आज के दूषित वातावरण, मिलावटी खाद्य पदार्थ, अटपटी जीवन शैली के दौर में योग में ही शक्ति है जो आपके जीवन को सहज बना सकता है। योग अपनाने से

आवेशों, आवेगों और आकांक्षाओं पर नियंत्रण भी संभव है। योग कहता है कि प्रत्येक रोग की जड़ हमारे मन में रहती है। मन को मजबूत बनाने का एकमात्र साधन योगाभ्यास है। अगर मन सध गया तो निश्चित है कि आप व्याधिमुक्त हो जायेंगे। योगासनों से व्यक्ति फुर्तीला बना रहता है तथा काम करने में थकान का अनुभव कम करेगा। योगासन करते समय अपने ध्यान को उस अंग पर लगायें जहाँ बल पड़ रहा है। एक घंटे का नियमित योगाभ्यास आपको स्फूर्त रखेगा। योगाभ्यास समाप्ति के आधे घंटे तक कुछ भी ख़ाना नहीं चाहिये। जीवन जीने की कला के धर्म गुरु श्री रविशंकर ने कहा कि योग, प्राणायम एवं आसंन अपनाने से आदमी नशे की आदत से छुटकारा पा सकता है। जीवन को स्वस्थ एवं प्रसन्न रखने के लिये योग अपनाने की सलाह दी है। उन्होंने यह भी कहा कि विश्व के अन्य देश हमारे देश से योग की शिक्षा ले सकते हैं।

स्वामी रामदेव कहते हैं कि योग कोई पूजा-पाठ नहीं, विज्ञान है। योग करना सबसे सस्ता और सबसे सरल है। हर व्यक्ति को योग करना चाहिये। इससे न केवल जटिल रोगों से मुक्ति मिलती है, बल्कि मनुष्य स्वस्थ और स्वच्छ भी रहता है। योग सम्पूर्ण समस्याओं का अचूक समाधान भी है। उन्होंने शिक्षा के साथ *'यौन शिक्षा'* देने के बजाय *'योग शिक्षा'* देने पर बल दिया है। उनके शिविरों में अब तक एक करोड़ से अधिक लोग भाग ले चुके हैं लेकिन टेलीविजन के माध्यम से तो करोड़ों-करोड़ों लोग लाभान्वित हो रहे हैं।

योग की महत्ता पुनर्स्थापित करने में स्वामी रामदेव का योगदान निर्विवाद सफल है। गत रामनवंमी के दिन उनकी विशाल योजना का प्रथम चरण 'पतंजलि योग पीठ' का उद्घाटन हुआ और उसमें धर्माचार्यों एवं सभी राजनीतिक पार्टियों के विशिष्ट लोगों ने भाग लिया। स्वामी रामदेव के योगदान से सभी आश्वस्त हैं। लोगों को विश्वास हो गया है कि अगर स्वस्थ रहना है तो आज से ही योग अपनाइये - रोग भगाइये की सच्चाई स्वीकार करनी होगी।



धनुर्धर अर्जुन

- सूर्यपाल सिंह

कुरुवंश में धृतराष्ट्र एवं पाण्डु दो भाई हुए। धृतराष्ट्र बड़े थे लेकिन जन्मान्ध थे। पाण्डु छोटे थे लेकिन श्राप के कारण अपनी दोनों पत्नियां कुंती एवं माद्री के साथ संभोग नहीं कर सकते थे। कुंती वसुदेव की बहन और राजा कुंतिभोज की पुत्री थी। राजकुमारी रहते हुये उसने दुर्वासा मुनि की तब बड़ी सेवा की थी जब वे उसके पिता के अतिथि थे। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने उसे एक मंत्र आशीर्वाद-स्वरूप दिया। इस मंत्र के द्वारा वह किसी भी देवता का आवाहन कर उससे पुत्र प्राप्ति कर सकती थी। अतः कुंती के तीन पुत्र युधिष्ठिर भगवान यम से, भीम वायु देवता से और अर्जुन इन्द्र से पैदा हुये। कुंती ने अपना मंत्र माद्री को भी दे दिया उसके भी दो पुत्र नकुल और सहदेव अन्य देवताओं से उत्पन्न हुये। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने सौ पुत्रों को जन्म दिया।

गुरु द्रोणाचार्य ने पाण्डु एवं धृतराष्ट्र के पुत्रों को शस्त्र विद्या खासकर धुनर्विद्या में पारंगत किया। गुरु द्रोणाचार्य का धुनर्विद्या में सर्वश्रेष्ठ शिष्य अर्जुन हुआ। गुरु द्रोणाचार्य को एक बार राजा द्रुपद ने अपमानित किया था यद्यपि पहले दोनों मित्र थे। द्रोणाचार्य ने उससे बदला लेने का निश्चय किया। अपनी दक्षिणा (शिक्षा शुल्क) के रूप में उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि वे द्रुपद को पकड़ कर ले आयें। अर्जुन एवं भीम ने यह काम कर दिया। द्रोणाचार्य ने वैसा ही अपमानजनक व्यवहार द्रुपद के साथ किया जैसा द्रुपद ने उनके साथ किया था। द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने प्रतिज्ञा की कि वह द्रोणाचार्य का वध करेगा।

द्रुपद के यज्ञ करने से उनके पुत्र एवं पुत्री द्रौपदी यज्ञ कुण्ड से निकले

थे। कृष्ण द्रुपद के पारिवारिक मित्र थे। अतः उन्होंने सलाह दी कि द्रुपद अपनी कन्या का विवाह अर्जुन से करे। पाण्डवों के वनवास के अंतिम चरण में द्रुपद ने घोषणा की कि उनकी कन्या उस व्यक्ति से विवाह करेगी जो घूमती मछली की आँख का निशाना साध सकेगा। कृष्ण जानते थे कि केवल अर्जुन ही ऐसा कर सकेंगे। द्रुपद ने स्वयंवर का आयोजन किया और कृष्ण ने अर्जुन को सलाह दी कि यह स्वयंवर में भाग ले। अर्जुन ने मछली की आँख को भेदा और उसे द्रौपदी पत्नी के रूप में प्राप्त हो गई। पाण्डव अपनी माता के पास वापस लौटे जा उस समय भोजन तैयार कर रही थी। उन्होंने हमेशा की तरह बिना देखे कहा कि जो भी प्राप्त हुआ है उसे पाँचों भाई आपस में बाँट लें। अब द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी हो गई।

कृष्ण के लिये अर्जुन सर्वाधिक प्रिय थे। भागवतकार ने अर्जुन एवं कृष्ण को नर-नारायण की संज्ञा दी है। कृष्ण की क्रांतिकारी योजना में अर्जुन को महत्वपूर्ण पात्र की भूमिकाएँ निभानी थी। कृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से करा दिया। अब कृष्ण अर्जुन के मित्र, परामर्शदाता, सहायक एवं साले भी हो गये। महाभारत युद्ध में दुर्योधन ने कृष्ण से उनकी यादव सेना माँगी लेकिन अर्जुन तो कृष्ण को चाहते थे। अतः कृष्ण ने अर्जुन का साथ दिया।

अर्जुन ने देश, दुनिया एवं मानव जाति का कितना बड़ा उपकार किया। महाभारत युद्ध में अपने स्वजनों को देखकर अपना गाण्डीव एक कोने में रख दिया और मोहग्रस्त हो गया। युद्ध नहीं करूँगा उसके कितने-कितने तर्क अर्जुन ने दिया। अगर अर्जुन को मोह न होता और उसमें जिज्ञासु भाव न होता तो युद्धभूमि में भगवद्गीता का जन्म न होता। भगवद्गीता ऐसा अनुपम एवं अलौकिक ग्रंथ है जो भले ही बावन सौ वर्ष पहले युद्धभूमि में कहा गया हो लेकिन उसके वचन सार्वकालिक हैं, सार्वजनीन हैं एवं सर्वदेशीय है। उसका सम्बन्ध किसी देश, काल, जाति, से नहीं है। वह तो मनुष्य मात्र के कल्याण का ग्रंथ है जो महाभारत युद्ध के समय भी प्रासंगिक था। कारण उसने अर्जुन का मोह नष्ट किया और फिर अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हो गया। वह आज भी प्रासंगिक है तथा अनन्त काल तक प्रासंगिक रहेगा। मानव जाति पर अर्जुन का कितना बड़ा उपकार है इसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।

अर्जुन भगवान कृष्ण के अत्यन्त प्रिय पात्र थे। अर्जुन कितना बड़ा चरित्रवान था उसको केवल एक नीचे के उदाहरण से समझा जा सकता है। यह उदाहरण आज के बालकों को पढ़ाया जाना अति आवश्यक है कारण चरित्र संकट को दूर करने के लिये ऐसे उदाहरणों का पाठ्यक्रमों में समावेश होना चाहिये।

महाभारत युद्ध के पूर्व की घटना है। शंकर को संतुष्ट कर अस्त्र प्राप्त करने के लिए अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर तप कर रहे थे। तपस्या में उन्हें सफलता मिली। संतुष्ट हुए शंकर ने आशीष और अस्त्र दोनों प्रदान किया अर्जुन को। अंत में इन्द्र के आमंत्रण पर इन्द्रकील पर्वत से, अर्जुन अमरावती के लिये प्रस्थान किये। पर्वत पर तपस्या की बेला में इन्द्र ने अर्जुन की सुरक्षा का प्रबन्ध किया था। अत: उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अर्जुन अपना कर्तव्य समझते थे। इन्द्र ने इस तरुण तपस्वी अतिथि पुत्र को पूरे उत्साह से अपनी सुधर्मा सभा में सम्मानित किया। उसके स्वागत में नृत्य-गीत आदि का आयोजन किया गया। इन्द्र ने अर्जुन को अपने सिंहासन के अर्ध भाग में बैठाकर स्नेह की धारा से नहला कर उन्हें निहाल कर दिया। अर्जुन विनम्रता की मूर्ति बने इन्द्र की बगल में बैठे थे। उनका शरीर तप के तेज से दमक रहा था। उनके अंग-अंग से अंगड़ाई लेती हुई तरुणाई की आभा प्रस्फुटित हो रही थी। श्याम वर्ण, सुगठित शरीर ब्रह्मचर्य की महिमा से मण्डित था। पीठ पर अग्नि-प्रदत्त दो अक्षय्य तूणीर और वाम स्कन्ध पर गाण्डीव धनुष लटक रहा था। वीरासन से बैठे अर्जुन को देखने से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वीर रस शरीर धारण कर बैठा हो- 'मनहु वीर रस धरे शरीरा।' देव-मण्डली के उपस्थित सदस्यों से अर्जुन का परिचय कराया गया। इसी क्रम में देवसुन्दरी उर्वशी का अर्जुन से सामना हुआ। एक तरफ अक्षय्य सौन्दर्य का भण्डार था तो दूसरी ओर अथाह बलो का सागर। यह वही उर्वशी थी जिसने कभी देवों को भी विस्मय में डालने वाले सौन्दर्य और विक्रम की खान पुरूरवा को भी अपने मदोन्मत्त यौवन एवं शरीर-लावण्य से क्रीत दास बना लिया था। अर्जुन ने कुछ देर तक उर्वशी को देखा, ध्यान से निहारा। अब तक उर्वशी अर्जुन पर अपना सब कुछ न्योछावर कर चुकी थी। वह उन्हें देखते ही विकल हो गई थी उनके तारुण्य का उपभोग करने के लिये। इन्द्र ने इस दृश्य को देखा। उन्होंने सोचा- 'देवसुन्दरी के सौन्दर्य

ने अर्जुन के मन को मोह लिया है।' वे अपने अतिथि पुत्र के मनोरथ को पूरा करना चाहते थे। फलतः उन्होंने गन्धर्वराज चित्रसेन को बुला कर एकान्त में निर्देश दिया- 'अर्जुन जब यामिनी-शयन के लिये अपने कक्ष में जाएँ तो देवकामिनी उर्वशी को भरपूर अलंकृत कर उनके पास भेज दिया जाए।' चित्रसेन ने देवराज के आदेश को शिरोधार्य किया। देवसुन्दरी ने इसे अपना अहोभाग्य माना।

रात्रि के दस बजे थे। सभी आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो अर्जुन शयन की तैयारी में थे। इसी समय उर्वशी के शयन-कक्ष में प्रवेश करती है। रात्रि की बेला। नीरव एकान्त। स्वर्ग-रत्न उर्वशी और भरत-कुल-भूषण नर-रत्न अर्जुन आमने-सामने। अद्‌भुत दृश्य था। उद्दाम काम-वासना से पूरित उर्वशी मुस्करा कर बार-बार नयन-बाण अर्जुन पर चला रही थी। अर्जुन इस परिस्थिति के लिये तैयार न थे। अप्रत्याशित, सर्वथा अप्रत्याशित। वे हड़बड़ा कर पलंक पर उठ बैठे। उर्वशी ने अर्जुन से कहा- 'अर्जुन, मैं आपके सौन्दर्य, माधुर्य एवं शौर्य आदि गुणों से आकृष्ट होकर यहाँ इस मधु-यामिनी को सरस बनाने आई हूँ। सम्प्रति आपकी बाहुओं में समा जाने के लिए अनंग मुझे परवश बना रहा है।' उर्वशी सोच रही थी- मेरे प्रस्ताव पर अर्जुन प्रसन्न हो उछल पड़ेंगे। किन्तु उत्तर में लज्जा से गड़े हुए, दोनों हाथों से कान मूंद कर अर्जुन ने कहा- "सौभाग्यशालिनि, भामिनि, मेरी दृष्टि में तुम गुरु-पत्नियों के समान पूज्या हो। सुश्रोणि, मेरे लिये महाभागा कुंती और शची के समान तुम भी हो। विलासिनि पुरुवंश की जननी होने के कारण मैंने तुम्हें पूज्य-भाव से इन्द्र सभा में निर्निमेष नयनों से निहारा था। देवि, मेरी दृष्टि में कामभाव का लेशमात्र भी न था। तुम मेरे लिये अत्यन्त आदरणीया और पूर्वजों की जननी हो।" अतः -

हे सुन्दरिशिरोमणि, मैं आपके चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप यहाँ से चली जाएँ। आप मेरी माँ के समान पूज्य हैं और मैं आपके द्वारा अबोध बालक की भाँति, रक्षा का पात्र हूँ।

उर्वशी अर्जुन के इस अप्रत्याशित उत्तर को सुनने के लिए तैयार न थी। वह सोचती थी कि मेरे सौन्दर्य लावण्य की आँधी में जब चिरकाल तक अखण्ड तपस्या करने वाले बड़े-बड़े ऋषि और महाबलशाली अखण्ड भूमण्डल के एक छत्र अधिपति पुरूरवा एक क्षण भी न ठहर सके, स्थिर न

रह सके तो इस तरुण की क्या बिसात जो मुझे स्वीकार न करे। किन्तु अर्जुन के विनम्र, धर्म से भरे हुए, दृढ़ उत्तर को सुनकर सन्न रह गई देवसुन्दरी उर्वशी। उसने अपने को संभालते हुए कहा- "वीर, हम अप्सराएँ हैं। हमारा किसी के साथ विवाह नहीं होता, गठबन्धन नहीं होता। हम स्वतंत्र हैं, बन्धन-विहीन हैं। अतः मुझे गुरुजनों की गुरुतर गद्दी पर बैठाना उचित नहीं है। आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैं काम-विह्वल हो रही हूँ। अतः आप मेरा त्याग कर अधर्म के भागीदार न बनें। मेरा दुःख दूर करना आपका कर्तव्य है।" किन्तु अर्जुन पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

इस पर क्रुद्ध होकर उर्वशी ने एक बार फिर अर्जुन को ललकारा- 'तरुण-तपस्वी, एक बार फिर सोच लो, समझ लो। यह तुम क्या कर रहे हो? अज्ञानतावश तुम कण्ठ में लटकते हुए बहुमूल्य हार को निकाल कर फेंकने जा रहे हो।"

उर्वशी की बात को सधैर्य सविनय अर्जुन ने सुना। वे तृण भर भी विचलित नहीं हुए अपने निर्णय और विचार से। हाथ जोड़े सिर झुकाए हुए उन्होंने बार-बार प्रार्थना की उर्वशी से वहाँ से चले जाने की। इस पर अप्सरा अप्रसन्न हो उठी। उसने कुपित हो निरपराध निष्कलुष अर्जुन को शाप दिया- 'अर्जुन, जाओ, तुम्हें स्त्रियों में नर्तक होकर रहना पड़ेगा और सम्मान-रहित होकर नपुंसक की भाँति विचरण करना पड़ेगा।'

तमतमाई हुई उर्वशी शाप देकर झमाझम चली गई। अर्जुन का मन दुःखित हो उठा। तलवार की धार पर चलना है सत्पथ का अनुवर्तन। धन्य हो अर्जुन धन्य! यदि आज का तरुण-वर्ग तेरी छाया का भी स्पर्श कर सके तो यह धरती स्वर्ग बन जाए।

सम्पूर्ण महाभारत में अर्जुन का चरित्र सर्वोपरि एवं अनुकरणीय है। अर्जुन सबका प्रिय पात्र था। गुरु द्रोणाचार्य का सबसे प्रिय शिष्य था। भगवान कृष्ण का अर्जुन भक्त, सखा, प्रेमी एवं बहनोई था। माता कुंती का सभी पुत्रों में अर्जुन पर विशेष आशीर्वाद था। कैसे नहीं होता! पत्नी द्रौपदी को स्वयंवर में स्वयं जीतकर लाया लेकिन माता कुंती के बिना देखे कहने पर सभी भाइयों की पत्नी होना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

महाभारत का युद्ध हो रहा था। एक ओर अर्जुन थे, जिनके सारथी थे श्रीकृष्ण। दूसरी ओर थे कर्ण और उनका सारथी सल्य। कृष्ण ने कर्ण के

सारथी से कहा- 'तुम हमारे विरुद्ध जमकर लड़ना पर मेरी एक बात मानना। जब भी कर्ण प्रहार करे तब कहना- यह भी कोई प्रहार होता है, तुम प्रहार करना जानते ही नहीं, बस इन वाक्यों को दोहराते रहना। सारथी शल्य ने कृष्ण की बात स्वीकार कर ली। युद्ध आरम्भ हुआ। कर्ण के प्रत्येक प्रहार पर शल्य कहता- यह भी कोई प्रहार है? तुम प्रहार करना जानते ही नहीं। उधर, अर्जुन के प्रत्येक प्रहार पर कृष्ण कहते- 'वाह, कैसा प्रहार किया है। वाह! क्या निशाना साधा है।' प्रत्येक बार कर्ण हतोत्साहित होता। इससे कर्ण का बल क्षीण होता गया। उसकी शक्ति टूट गई और वह शक्तिहीन हो गया। अर्जुन की शक्ति बढ़ती गई और पाण्डव पहले से अधिक शक्तिशाली हो गए। इसलिए प्रोत्साहन मन के लिए अमृत है, जबकि हतोत्साहित मन पराजय की पहली सीढ़ी है।

श्रीकृष्ण ने जब शिशुपाल का वध किया तो अर्जुन ने आश्चर्य से पूछा, 'जैसे आज निमिष मात्र में ही आपने इस दुष्ट को मृत्युदंड का पात्र मान लिया, वैसे आप पहले भी इसे मार सकते थे। यह तो सदैव आपका अपमान करता आया था।'

श्रीकृष्ण ने आत्मस्थ गाम्भीर्य के साथ उत्तर दिया, 'धनंजय, मैं तुम्हारा प्रश्न समझता हूँ। आज की तरह कभी भी मैं उसका संहार कर सकता था, किन्तु मेरे सम्मुख सदैव एक प्रश्न रहा है कि क्या बल का धर्म सदैव दंड देना ही है, क्षमा या सहन करना नहीं है? क्षमा तो बलवान ही कर सकता है, दुर्बल क्या क्षमा करेगा? सहन भी वही करेगा, जिसके पास सहनशक्ति होगी। अशक्त क्या सहन करेगा? अब तक मैं अपनी इन्हीं शक्तियों की परीक्षा ले रहा था। अपनी ही थाह ले रहा था कि मुझमें जो शक्ति है, वह कितनी मेरी है, क्योंकि शक्ति उतनी ही हमारी होती है, जिस पर हमारा, हमारे संकल्प का अंकुश रह सकता है।'

अर्जुन की महानता पर तो पूरा ग्रंथ तैयार हो सकता है। सात सौ श्लोकों की श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के अंतिम पाँच श्लोकों में में संजय ने महाराज धृतराष्ट्र से कहा- 'हे राजन् मैंने श्री वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अद्भुत रहस्ययुक्त और रोमांचकारी संवाद को सुना। श्री व्यास जी की कृपा से दिव्य दृष्टि द्वारा मैंने इस परम रहस्ययुक्त गोपनीय योग को साक्षात कहते हुये स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान से सुना है। इस

कल्याण कारक अद्भुत संवाद को पुनः पुनः स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित होता हूँ। हे राजन् विशेष क्या कहूँ, जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री विजय विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत हैं।'

भगवान कृष्ण एवं अर्जुन में कैसी अभिन्नता थी, इसके सम्बन्ध में श्रीकृष्ण स्वयं बोले- 'धर्मराज, आप बिल्कुल चिंता न करें। आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी तथा शिष्य हैं। आवश्यकता हो तो मैं इनके लिये अपने शरीर का माँस भी काटकर दे सकता हूँ और ये भी मेरे लिये प्राण त्याग कर सकते हैं। अर्जुन ने सबके सामने भीष्म को मारने की प्रतिज्ञा की थी, उसकी मुझे हर तरह से रक्षा करनी है। दैत्य एवं दानवों के साथ सम्पूर्ण देवता भी युद्ध करने आ जाएँ तो अर्जुन उन्हें परास्त कर सकते हैं, फिर भीष्म की तो बात ही क्या है।'

पूर्णावतार भगवान कृष्ण जिस अर्जुन के सखा हों, उसके लिये फिर कौन सा काम असम्भव है? अर्जुन की अनन्यता, वीरता एवं दिव्य चरित्र का पाठ आज के पाठ्यक्रम में रखा जाये तो निश्चित रूप से हमारे नौजवान भाइयों में भक्ति, वीरता एवं दिव्य चरित्र का बीजारोपण होगा।



- संत-संग से अहंता-ममता मिटती है।
- साधु होने का मतलब है जो अपने लिए नहीं जीता, धर्म और संस्कृति के लिए जीता है।
- जो मान-अपमान से प्रभावित नहीं है वही स्वामी है अन्यथा गुलाम।
- संन्यासी का अर्थ है— 'जागा हुआ व्यक्ति'।
- पूर्ण सन्तुलित व्यक्तित्व ही योगी है।
- जिनके चरणों में मस्तक सहज ही झुक जाय वह महापुरुष है।
- तन में क्या है, यह वैद्य जान लेता है और मन में क्या है, यह सद्गुरु जान लेता है।

।।श्रीः।।

शक्तिपीठ विशालाक्षी

– डॉ. पवन कुमार शास्त्री

अध्यक्ष- साहित्य संगीत परिषद् काशी।

शाक्त ग्रंथों में शक्तिपीठ का अभिधान देकर शक्ति-साधना के कुछ विशिष्ट स्थलों का उल्लेख किया गया है। ये विशिष्ट स्थल भगवती पराम्बा के चिन्मय श्रीअंगों के इस भूतल पर गिरने से निर्मित हुये थे। पुराणों में कथा मिलती है कि दक्ष प्रजापति द्वारा अपने यहाँ किये गये यज्ञ में भगवान् शंकर को आमन्त्रित न करने के कारण पतिपरायणा-दक्षसुता भगवती सती ने यज्ञाग्नि में अपने शरीर का परित्याग करके यज्ञ-विध्वंस कर दिया था और भूतभावन भगवान् शंकर सती की देह को अपने कंधे पर रखकर लौकिक-पुरुषों की भाँति उन्मत्त भाव से नृत्य करते हुये पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे थे। तब ब्रह्मादिक देवताओं के अनुरोध पर भगवान् विष्णु ने सती के विभिन्न अंगों को अपने सुदर्शन चक्र से खण्ड-खण्ड काट कर गिरा दिया था। भगवती पराम्बा के ये अंग तत्कालीन बृहत्तर भारत[१] के ५१ स्थलों पर गिरे थे जिनसे ५१ शक्तिपीठों[२] का आविर्भाव हुआ था।

टिप्पणी-

1. भारतवर्ष के आधुनिक सीमित स्वरूप के कारण कुछ शक्तिपीठ भारत के पड़ोसी राष्ट्रों यथा- नेपाल, श्रीलंका, पाकिस्तान, बंगलादेश और तिब्बत की सीमाओं में दर्शाये जाते हैं।

2. कुछ ग्रंथों में इन शक्तिपीठों की संख्या 52-72 या 108 भी कही गई है किन्तु देवीपुराण (महाभागवत) में इन शक्तिपीठों की संख्या 51 ही बताई है तथा परम्परागत रूप से देवी भक्तों और सुधी जनों में भी 51 शक्तिपीठों की ही विशेष मान्यता है।

शाक्त ग्रंथों में इन शक्तिपीठों के गणनाक्रम में वाराणसी स्थित शक्तिपीठ-विशालाक्षी का नामोल्लेख सर्वप्रथम स्थान पर किया गया है और कहा गया है कि काशी में भगवती सती का कर्ण-मणि गिरने से इस शक्तिपीठ का आविर्भाव हुआ था। यद्यपि काशी में दुर्गा, चण्डी, गौरी और शक्ति के सभी देवी-पीठों की कुल संख्या ८६ कही गई है तथापि शक्तिपीठ विशालाक्षी की महत्ता सर्वोपरि है। देवी भागवत में काशी में एकमात्र विशालाक्षी शक्तिपीठ होने का ही उल्लेख प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में काशीपुरी के अन्तर्गत देवी के सिद्ध स्थानों में एक मात्र विशालाक्षी का वर्णन ही मिलता है—

वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी।
अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये।। (देवी भागवत)

स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीकाशीखण्ड में श्री विशालाक्षी जी को नौ गौरियों में से पाँचवी गौरी के रूप में दर्शाया गया है तथा इनका विशेष महत्व बतलाया गया है। यहाँ भगवती श्री विशालाक्षी के भवन को भगवान् विश्वनाथ का विश्रामस्थल कहा गया है। काशीपति भगवान् विश्वनाथ भगवती श्री विशालाक्षी के मन्दिर में उनके समीप विश्राम करते हैं तथा इस असार संसार के अथाह कष्टों को झेलने से खिन्न हुये मनुष्यों को सांसारिक कष्टों से विश्रान्ति देते हैं :-

विशालाक्ष्या महासौधे नम विश्राम भूमिका।
तत्र संसृतिखिन्नानां विश्रामं श्राणयाम्यहम्।। (श्रीकाशीखण्ड)

भगवती विशालाक्षी जी की महिमा अपार है। काशीखण्ड में श्री विशालाक्षी जी के दर्शन-पूजन हेतु कुछ विशेष निर्देश दिये गये हैं। भगवती की अभ्यर्थना हेतु सर्वप्रथम काशी के विशालगंगा[1] नामक तीर्थ में स्नान करने का आदेश दिया गया है—

"स्नात्वा विशालगंगायां विशालाक्षीं ततो ब्रजेत्।"
(श्रीकाशीखण्ड)

---

1. काशी में वर्त्तमान कालीन ललिता घाट एवं मीर घाट के बीच श्री गंगा जी में काशीखण्डोक्त विशालगंगा तीर्थ है।

भगवती श्री विशालाक्षी[1] की पूजा में धूप, दीप, सुगन्धित माला, मनोहर उपहार, मणियों एवं मोतियों के आभरण, चामर तथा नूतन वस्त्रादि समर्पित करने को कहा गया है। विशालाक्षी शक्तिपीठ में अर्पित किया गया स्वल्प भी अनन्तगुना होकर प्राप्त होता है। यहाँ दिया गया दान, जपा हुआ नाम, किया गया देवी-स्तवन एवं हवन मोक्षदायी होता है। विशालाक्षी जी की अर्चना से रूप और सम्पत्ति दोनों प्राप्त होते हैं—

वाराणस्यां विशालाक्षी पूजनीया प्रयत्नतः।
धूपैर्दीपैः शुभैर्माल्यैरुपहारैर्मनोहरैः।।
मणिमुक्ताद्यलंकारैर्विचित्रोल्लोच चामरैः।
शुभैरनुपभुक्तैश्च दुकूलैर्गन्धवासितैः।।
मोक्षलक्ष्मी समृद्ध्यर्थं यत्र कुत्र निवासिभिः।
अत्यल्पमपि यद्दत्तं विशालाक्ष्यै नरोत्तमैः।।
तदानन्त्याय जायेत मुने लोकद्वयेऽपि हि।
विशालाक्षीमहापीठे दत्तं, जप्तं, हुतं स्तुतम्।।
मोक्षस्तस्यपरीपाको नात्रकार्या विचारणा।
विशालाक्षी समर्चातो रूप सम्पत्तियुक्पतिः।।

(स्कन्दपुराण ७०।१०-१४)

भगवती श्री विशालाक्षी देवी गौरवर्ण की हैं तथा उनके दिव्य श्री विग्रह से तपाये हुये स्वर्ण के समान कान्ति निरन्तर निकलती रहती है। भगवती अत्यन्त सुन्दरी और रूपवती हैं तथा सर्वदा षोडशवर्षीया (१६ साल की) दिखलाई देती हैं। जटाओं के मुकुट से मण्डित तथा नाना प्रकार के सौभाग्याभूषणों से अलंकृत भगवती रक्तवस्त्र धारण करती हैं और मुण्डों की माला पहने रहती हैं। दो भुजाओं वाली अम्बिका अपने एक हाथ में खड्ग तथा दूसरे में खप्पर धारण किये रहती हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि भगवती विशालाक्षी भक्तों के समस्त शत्रुओं का विनाश कर डालती हैं तथा

---

1. भगवती श्री विशालाक्षी जी का मन्दिर स्थानीय मीर घाट मुहल्ले में स्थित है। यहीं पर श्रीविशालाक्षीश्वर महादेव जी का शिवलिंग भी है। इस प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्वार 100 वर्ष पूर्व 1908 ई0 में सम्पन्न हुआ था।

उन्हें उनका अभीष्ट प्रदान करती हैं। जगज्जननी विशालाक्षी देवी सभी प्रकार के सौभाग्यों की जननी हैं। जो भक्त इनकी शरण में आते हैं उनका सच्चा-भाग्योदय हो जाता है। भगवती की असीमकृपा एवं दयालुता से उनके भक्तजन देवताओं में भी ईर्ष्या जगाने वाली अतुलनीय सम्पत्ति को अत्यन्त सरलता पूर्वक प्राप्त कर लेते हैं—

ध्यायेद्देवीं विशालाक्षीं तप्तजाम्बूनदप्रभाम्।
द्विभुजामम्बिकां चण्डीं खड्गखर्पर धारिणीम्।।
नानालंकार सुभगां रक्ताम्बर धरां शुभाम्।
सदाषोडशवर्षीयां प्रसन्नास्यां त्रिलोचनाम्।।
मुण्ड मालावतीं रम्यां पीनोन्नत पयोधराम्।
शिवोपरिमहादेवीं जटा मुकुट मण्डिताम्।।
शत्रुक्षयकरीं देवीं साधकाभीष्ट दायिकाम्।
सर्वसौभाग्यजननीं महासम्पत्प्रदां स्मरेत्।।

काशी में दक्षिण दिग्यात्राक्रम में ११वें क्रम पर श्री विशालाक्षी जी के दर्शन का निर्देश है तथा यहाँ वासन्तिक नवरात्र में नवगौरी दर्शनक्रम में पाँचवे दिन पञ्चमी तिथि को विशालाक्षी जी के दर्शन का विधान है। नवरात्र में एवं प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष की तृतीयातिथि को सभी नौ गौरियों की यात्रा करने तथा तत्स्थानीय तीर्थों में स्नान करने का जो नियम श्रीकाशीखण्ड में दिया गया है उसके अनुसार भी प्रतिमास शुक्ल तृतीया को सर्वकामप्रदायिनी श्री विशालाक्षी जी का दर्शन किया जाता है। काशी में प्रतिवर्ष भाद्रपद कृष्णपक्षीया तृतीया तिथि के दिन माता विशालाक्षी जी के दर्शन करने का निर्देश प्राप्त होता है। भगवती श्रीविशालाक्षी जी की महिमा सुदूर दक्षिण भारत में भी विख्यात है। कहा गया है कि काशीपुराधीश्वरी भगवती अन्नपूर्णा, भगवती भवानी तथा भगवती श्री विशालाक्षी जी एक ही हैं। महिमामयी भगवती विशालाक्षी को शतकोटि प्रणाम।

◆

वास्तु शास्त्र के कुछ सरल व सामान्य नियम

घर के पूर्व या उत्तर में खुला स्थान रखें। कुंआ हैंड पाइप या बोरिंग घर के उत्तर या पूर्व दिशा में होनी चाहिये। घर की फर्श का ढलान भी उत्तर या पूर्व दिशा में होना चाहिये। घर में उत्तर-पश्चिम दिशा को पूर्णतः बन्द न करे। क्योंकि इस दिशा में शरीर को निरोग रखने वाला वायु तत्त्व का शक्ति प्रवाह मिलता है। घर के दक्षिण-पूर्व कोण (आग्नेय कोण) पर रसोई घर होना चाहिये। रसोई बनाते समय मुँह पूर्व दिशा में हो। घर के दक्षिण पश्चिम (नैर्ऋत्य कोण) में शयन कक्ष होना चाहिये। घर के दक्षिण या पश्चिम में अन्य शयन कक्ष भी हो सकते हैं। स्टोर रूम घर के दक्षिण या पश्चिम में बनायें। घर के दक्षिण या पश्चिम दिशा में सीढ़ियाँ भी होनी चाहिये। पुस्तकों की आलमारी दक्षिण या पश्चिम दिशा में रखें। घर में तिजोरी दक्षिण की दीवार पर उत्तर में खुलने वाली हो। दीवाल घड़ी व आईना उत्तर या पूर्व की दीवाल पर लगायें। घर में गेस्ट रूप उत्तर पश्चिम (वायव्य कोण) में तथा ड्राईंग रूम उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) में होना चाहिये। बच्चों के पढ़ने का कमरा उत्तर पूर्व दिशा (ईशान कोण) में हो तथा पढ़ते समय मुँह पूर्व दिशा की ओर होना चाहिये। घर में शौचालय (नैर्ऋत्यकोण) दक्षिण पश्चिम दिशा तथा उत्तर पूर्व दिशा में नहीं बनवाना चाहिये। शौचालय का मुँह दक्षिण या उत्तर दिशा की तरफ हो। घर के दक्षिण-पूर्व दिशा (आग्नेय कोण) या उत्तर-पश्चिम दिशा (वायव्य कोण) में बिजुली का मीटर लगवाना चाहिये। छत पर पानी की टंकी पश्चिम या उत्तर पश्चिम (वायव्य कोण) की ओर होनी चाहिये। घर या कार्यालय में पूजा का स्थान उत्तर पूर्व (ईशान कोण) में होना चाहिये।

घर में एक मंजिल की १७ चीढ़ियाँ तथा खिड़की दरवाजों की सम संख्या होगी चाहिये। घर या आफिस में बीच का कुछ स्थान (ब्रह्म स्थान)

खाली छोड़ देना चाहिये। घर में फूल पौधे पूर्व या उत्तर, बड़े वृक्ष दक्षिण या पश्चिमी दिशा में हो। घर में दक्षिण दिशा की ओर कोई गड्ढा नहीं होना चाहिये। घर या आफिस में उत्तर दिशा खाली नहीं रहे यह कुबेर की दिशा अर्थात् धनागमन की दिशा है।



भूखण्ड पहली नजर में अत्यन्त शुभ हो

वास्तु शास्त्र का अर्थ होता है वास करने के स्थान से। 'वास्तु' संस्कृत की 'वस' धातु से बना है जिसका अर्थ है जीवन जीना या वास करना। यह शास्त्र मुख्यत: वास करने के स्थान अर्थात् भवन के निर्माण तथा हमारे ब्रह्मणीय ऊर्जा के उचित समन्वय पर आधारित व भवन निर्माण में प्रयुक्त चीजों पर निर्भर करता है। यह भूमि के आकार, प्रकार, रंग, गंध, ढाल, लम्बाई-चौड़ाई, दिशा, द्वार निर्धारण, जल स्त्रोतों, कक्षों में निर्धारण, रसोई, शौचालय आदि का पूर्ण विवेचन तथा अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करता है। जिसके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन काल में अथक परिश्रम द्वारा अर्जिति धन का सही-सही उपयोग कर सके।

भूमि चयन- भूमि का चयन करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उस जगह पूर्व में कोई श्मशान, कब्रिस्तान, अस्पताल, देवालय, पुलिस थाना या प्रताड़ना स्थल की भूमि तो नहीं रही है। क्योंकि ऐसी जगहों पर बने फ्लैट में निर्माण कराकर रहने वाले लोगों को गंभीर समस्याओं, विपदाओं, दैवी प्रकोपों से ग्रस्त जानलेवा, घातक रोगों से बीमार देखा गया है।

भूमि के आकार-प्रकार का महत्व- वास्तु में भूमि के आकार का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। चौकोर, आयताकार, वृत्ताकार (गोल) भूखंड प्राकृतिक व्यवस्थाओं से अधिकतम सामंजस्य के कारण शुभ, धनागम, कष्ट-निवारण, सुख समृद्धि तथा सभी प्रकार से श्रेष्ठ पद प्रतिष्ठा प्रदायक माना गया है। इसके विपरीत अर्धवृत्ताकार, पंखाकार, शकटाकार, धनुषाकार, अंडाकार, त्रिकोणीय तबलाकार भूखंड अनेक प्रकार के कष्टों को देने वाला,

अशुभ होता है। अतः ऐसे भूखण्डों को त्यागना ही श्रेयस्कर होगा। वास्तु शास्त्र के अनुसार यदि कोई भूखण्ड किसी व्यक्ति को पहली ही नजर में शांति प्रदान करे, शीतलता का अनुभव हो तथा अपनी ओर आकर्षित करे तो यह जान लेना चाहिए कि यह भूखंड उस व्यक्ति के लिए अत्यन्त शुभ सिद्ध होगा।

दिशाओं का महत्व- पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण ये चार मुख्य दिशाएँ हैं। आग्नेय, ईशान, वायव्य, नैर्ऋत्य ये चार उप दिशाएँ हैं। हर दिशा व उप दिशा के अपने कुछ खास गुण-दोष होते हैं जिन गुण दोषों के अनुसार हमें शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं। दिशा के निर्धारण में ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि भूखंड का वास्तु नियमों के अनुसार होना आवश्यक है। इस विषय में जानकार लोगों का दिशा-निर्देश निर्माण के पूर्व प्राप्त कर लेना चाहिए।

- किसी भी भू-खण्ड पर कुल क्षेत्रफल का ६०-८० प्रतिशत भाग ही निर्माण कार्य में प्रयुक्त होना चाहिए। भूमि शोधन पूर्ण संस्कार व विधि विधान से शुभ मुहूर्त में होना चाहिए।



- सद्गुरु जीवन की परम-प्यास को परम-तृप्ति में बदलने वाला है।
- जिसको गुरु में सम्पूर्ण निष्ठा है उसके लिए गुरु ही ग्रंथ है।
- गुरु-शिष्य का संबंध एक बंधन है लेकिन यह बंधन मुक्त करता है।
- कथा का प्राकट्य करूणा से होता है।
- श्रीमद्भागवत विशुद्ध प्रेमशास्त्र है।
- वेदों-उपनिषदों का सार है श्रीमद्भागवत।
- वेद वृक्ष है और उसका सुन्दर फल भागवत है।
- भागवत के प्रत्येक श्लोक में रस ही रस है।
- श्रीमद्भगवद्गीता वैश्विक ग्रंथ है।
- श्री कृष्ण ने गीता गाकर कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बना दिया।
- सद्गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलना ही उसकी सबसे बड़ी सेवा है।
- गुरु का जीवन ही गुरु का संदेश है।

अष्टादशभुजा मंदिर के वार्षिकोत्सव का आँखों देखा वर्णन

– डॉ. सुबास सिंह

आज सुबह से ही परमपूज्य गुरुदेव व आदरणीय माता जी के आशीर्वाद के फलस्वरूप जन मानस में लगातार आनन्द की अनुभूति हो रही है और मेरे अरमान के आंगन में चारों तरफ खुशियों का बसेरा ही बसेरा है। हो भी क्यों न? आज अष्टादश भुजा महारानी का पटिआ धाम में आठवाँ वार्षिकोत्सव समारोह है। पटिया धाम के वार्षिक समारोह में चारों तरफ प्रसन्नता की लहर दिखायी पड़ रही है। सबसे पहिले मुख्य मंदिर में प्रवेश द्वार के उपर तूलिका से दोनों ओर दो बड़े शेरों को बनाया गया है और सम्पूर्ण मन्दिर परिसर को खूब माला-फूल से सजाया गया है। विद्युत के झालर, फोकस, बल्ब, हेलोजन की लाइट से पूर्ण प्रकाश की व्यवस्था विधिंवत रूप से की गयी है। मैं देख रहा हूँ कि मंदिर के शिखर के कलश को प्रकाश पुंज एवम् .झालरों से इस तरह सजाया गया है कि मालूम पड़ रहा है कि शीर्ष कलश ही घूम रहा है। मंदिर में प्रवेश करने पर साक्षात् अष्टादश भुजा माता का दर्शन हो रहा है। माँ को खूब बढ़िया वस्त्रों से व सोने-चाँदी के दिव्य आभूषणों से सुसज्जित किया गया है। फूल-माला से चारों तरफ सजाकर बहुत ही आकर्षक माँ की झाँकी सजायी गयी है। चारों तरफ घण्टा-घड़ियाल बज रहे हैं तथा ध्वनि विस्तारक यंत्रों से माँ के दैविक गीत मन को मुग्ध कर ले रहे हैं। मंदिर प्रांगण में ही दायीं तरफ (मां के) भगवान भोले नाथ का शिवलिंग है जिस पर बड़े से नागराज फन लगाये विराजमान हैं तथा शिवलिंग के बायें तरफ पवन पुत्र बजरंगबली तथा दायें तरफ भी एक दिव्य देव विराजमान हैं, जो मन्दिर प्रांगण को दिव्य शक्ति व ऊर्जा प्रदान कर रहे हैं। ऐसा मनोहरी यह दृश्य मन को मुग्ध कर ले रहा है।

मंदिर प्रांगण से ठीक बायीं ओर परमपूज्य गुरुदेव का मन को शान्ति प्रदान करने वाला आश्रम है। आश्रम व मंदिर प्रांगण के बीच एक चौड़ा रास्ता है जो पूरब दिशा में आगे जाकर दायीं ओर मुड़ जाता है। उसी रोड पर बायीं ओर एक बड़ा पण्डाल प्रसाद वितरण, व प्रसाद पाने वाले वी.आई.पी. लोगों के लिये बनाया गया है। मंदिर प्रांगण के मुख्य द्वार दायीं तरफ जो रोड जा रही है उस रोड पर आगे चलके शीतल पेय और खाद्य पदार्थों के कई स्टाल लगाये गये हैं। किसी स्टाल पर नीबू पानी, किसी पर मट्ठा, किसी पर मीठा ठन्डा शरबत तथा किसी पर ठंडा पानी की विधिवत व्यवस्था की गयी है। उसी के आगे मंदिर मे आये श्रद्धालुओं के लिये प्रसाद की व्यवस्था भी है, तथा उसी से आगे होते हुये लगभग १ किलोमीटर तक मुख्य मार्ग पर जबरदस्त प्रकाश व सफाई से रंग-रौगन किया गया है। मुख्य मार्ग पर विशाल गेट को भी सजाया गया है और वही से शुरू हो जाती है माँ के दर्शन की अभिलाषा, और जो भक्त जिस-भाव से माँ की दर्शन पूजा करता है उसे अविलम्ब माँ पूर्ण करती है। क्योंकि जबसे गुरु जी ने यहाँ पैर रखा है तब से ही दिन-दूना, रात-चौगुना यहाँ का विकास हो रहा है। चारों तरफ प्रसन्नता की अनुभूति है। मुख्य मंदिर के बायीं ओर के विशाल मैदान को घेर कर के एक अद्भुत छटा प्रदान की गयी है। मैदान में दक्षिण पूरब कोने पर एक विशाल थियेटर का निर्माण किया गया है, जिस थियेटर पर आज "तुसे बड़ा ना दानी श्याम" का नृत्य नाटिका का मंचन होगा। उसी थियेटर के बायीं ओर वृक्ष के नीचे पूज्य गुरुदेव व आदरणीया माता जी का अलग से एक आसन बनाया गया है। जिस पर गुरुदेव व गुरुमाता विराजमान होंगी। थियेटर के बायीं ओर कुछ वी.आई.पी. लोगों के लिये सोफासेट, व कुर्सियाँ लगाई गयी हैं तथा थियेटर के ठीक सामने विशाल मैदान को गद्दा-तोशक लगाकर सफेद चादनी बिछा दी गयी है। मैदान को कई छोटे-छोटे सेक्टरों में बाँट दिया गया है। जिससे आये हुये दर्शनार्थी व श्रद्धालुओं को "तुमसे बड़ा न दानी श्याम" नृत्यनाटिका, भक्ति सन्ध्या व भजन का भरपूर आनन्द मिल सके। पूरे मैदान व मंदिर प्रांगण को सफेद दुधियाँ से नहला दिया गया है जो अतीव शोभनीय लग रहा है। सायंकाल का समय हो चुका है परम पूज्य गुरुदेव व आदरणीया माता जी माँ की आरती की तैयारी कर रही हैं, भक्तों का समूह भी धीरे-धीरे मंदिर प्रांगण में बढ़ता जा रहा है। मंदिर

की आरती प्रारम्भ हो गयी है। माँ की सुन्दर आरती तथा सुंदर श्लोकों द्वारा स्तुति की जा रही है। माँ को छप्पन प्रकार के भोगों की प्रसाद चढ़ायी गयी है जो एक अनुपम छटा बिखेर रही है। माँ की मूर्ति जो पूर्ण रूप से शक्ति पीठ है आज प्रसन्न होकर अपने भक्तों को आशीर्वाद प्रदान कर रही है। आरती हो चुकी है। माँ के जयकारे व शंखनाद से चारों दिशायें गुन्जायमान हो रही हैं, आसुरी शक्तियों का नाश हो रहा है, तथा सारे दर्शनार्थी एकदम आज धन्य-धन्य हुये जा रहे हैं। माँ के आशीर्वाद से एक नवीन ऊर्जा का संचार हो रहा है। सारे लोग उल्लसित, उमंग युक्त एवं प्रसन्न हैं। आरती के बाद, मंदिर प्रांगण के बाहर व भीतर दर्शनार्थियों की भीड़ बढ़ती जा रही है। थियेटर स्टेज पर कलाकार भी पहुँच चुके हैं। परमपूज्य गुरुदेव भी अपना आसन ग्रहण कर लिये हैं। सारे भक्त श्रद्धा के साथ गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक हो रहे हैं और गुरुदेव से आशीर्वाद प्राप्त कर यथा स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं। आज गुरुदेव भी अपने भक्तों को खूब दिल खोलकर आशीर्वाद दे रहे हैं। परमपूज्यनीया माता जी ने पूरी व्यवस्था को अपने हाथों में ले रखा है। वे पूरे मंदिर क्षेत्र, मैदान, पण्डाल, प्रसाद वितरण इत्यादि सभी स्थानों पर अपनी दृष्टि रखते हुये मंदिर प्रांगण में आये हुये श्रद्धालुओं को कोई कष्ट न हो इसका बराबर ध्यान रख रही हैं। कभी वे मंदिर प्रांगण में, कभी थियेटर के स्टेज के पास, कभी प्रसाद वितरण स्थान पर, तथा हर आने-जाने वाले सभी लोगों पर बराबर नजर रखी हुयी हैं। कोई दुर्व्यवस्था कहीं न हो उसकी तथा पूरे मंदिर परिसर की सुरक्षा की व्यक्तिगत कमान भी आदरणीय माता जी ने अपने हाथों में ले रखी हैं। धन्य हैं माता जी, जो इस ऊर्जा के प्रबल वेग के साथ सारे कार्यों को खुद अपने बल बूते पर संचालित कर रही हैं, माता जी ने हर स्थान पर अपने निजी वालेन्टियर लगा रखे हैं जो मंदिर क्षेत्र में आये हुये दर्शनार्थियों की मदद कर रहे हैं।

सारा कार्यक्रम निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो इसके लिये विघ्न विनायक श्री गणेश भगवान की वंदना प्रारम्भ हो चुकी है तथा गणेश वंदना की समाप्ति के बाद बंगाल से आयी हुयी कलाकार ने देवीगीत प्रस्तुत किया। भक्त व श्रद्धालु इसका भरपूर आनन्द उठा रहे हैं। पूरा मैदान धीरे-धीरे खचाखच भरता चला जा रहा है। आदरणीया माता जी भी परम पूज्य गुरुदेव के बायीं तरफ आकर अपना स्थान ग्रहण कर चुकी हैं और अब इसके बाद

चिर-प्ररिक्षित "तुमसे बड़ा ना दानी श्याम" की नृत्य नाटिका शुरू हो जाती है।

भक्तों का एक जत्या नाचते-गाते, उछलते-कूदते मस्ती के साथ भक्ति के रस में डूबे बाबा के दर्शन के लिये चला आ रहा है। कुछ बाहरी लोग जो राजस्थान से घूमने के लिये आये हैं उनको आश्चर्य ह्ये रहा है कि ये कैसे भक्त हैं जो इस तरह प्रसन्नता की मुद्रा में हैं। तभी एक वृद्ध व्यक्ति उन्हें बताता है कि ये लोग खाटू के श्याम का दर्शन करने जा रहे हैं। यह स्कंध पुराण पर आधारित खाटू के श्याम की पूर्ण जीवन गाथा है जिसे कुमार नरेन्द्र जी व उनकी पूरी टीम बखूबी दर्शा रही है। नृत्य नाटिका की शुरुआत में पाँचों पाण्डवों के बीच भगवान श्री कृष्ण के साथ सभी लोग राजदरबार में विराजमान हैं। इसी समय भीम पुत्र घटोत्कच वहाँ प्रवेश करते हैं। घटोत्कच सबको प्रणाम करते हुये एक तरफ अपना स्थान लेते हैं। घटोत्कच अब युवा हो चुके हैं। इसलिये उनकी शादी का प्रस्ताव आता है तो भगवान श्री कृष्ण उन्हें कामकन्टंका नाम की कन्या से शादी करने का प्रस्ताव देते हैं। कामकन्टका के पिता का वध खुद श्री कृष्ण ने अपने हाथों से किया था। कामकन्टका की एक तेज-तर्रार चतुर बिदुषी लड़की है जिसनें प्रतिज्ञा कर लिया है कि जो मेरे प्रश्नों का उत्तर देगा तथा जो बलशाली होगा उसी से मैं विवाह करुँगी। जो ऐसा नहीं करेगा उसका मैं तुरंत गरदन काट दूँगी। इस परिप्रेक्ष्य में बहुत सारे राजकुमारों ने अपने प्राण गँवा दिये थे।

घटोत्कच कामकन्टका के राज दरबार में आते हैं तथा अपने कुशलता एवं चतुरता का परिचय देते हुये कामकन्टका को वाक्-प्रश्न युद्ध में परास्त करते हैं। जब कामकन्टका अचानक हाथों में तलवार लेकर घटोत्कच पर प्रहार करती है तब घटोत्कच उसे भी बड़ी बुद्धिमानी के साथ नाकाम करके उसे धराशायी कर देते हैं। अब तो कामकन्टका पूर्ण रूप से परास्त हो चुकी और घटोत्कच को वह अपना पति स्वीकार कर चुकी है। घटोत्कच, कामकन्टका को लेकर पाण्डवों के राज्य में वापस आते हैं और यहीं पर विधिवत शादी करते हैं। इस तरह कुछ समय व्यतीत हो जाता है। तब इसी बीच इन लोगों से एक पुत्र का जन्म होता है जिसका नाम बर्बरीक रखते हैं। बर्बरीक बहुत ही चतुर, धीर-वीर, निर्भीक बालक है जो दिन-दूना, रात-चौगुना प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते हुये युवा हो जाता है, तथा माँ

दुर्गा की तपस्या करता है। माँ ने दर्शन देकर आशीर्वाद दिया कि एक ब्राह्मण विजय नाम के आयेंगे। उनकी पूरी देख-भाल करते हुये तपस्या-आराधना पूर्ण कराना। उसके बाद तुम्हें खुद वे खुद सारी सिद्धि प्राप्त हो जायेगी। बर्बरीक बड़ी लगन एवम् श्रद्धा के साथ आये हुये ब्राह्मण की रक्षा की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेते हैं और ब्राह्मण विजय तपस्या में लीन हो जाते हैं। रात्रि के चार पहर होते हैं तथा हर पहर में दानवीय शक्तियों से जमकर टक्कर होता है लेकिन जीत बर्बरीक की ही होती है। इसी प्रकार राक्षसों से युद्ध करते-करते वे पाताल लोक पहुँच जाते हैं और वहाँ पर भी दानवों, राक्षसों का नाश कर देते हैं। तत्पश्चात् वे लौटते हैं तथा बीच में रास्ता भटक कर नाग लोक पहुँच जाते हैं। वहाँ पर नाग कन्या के द्वारा विवाह का प्रस्ताव रखने पर बर्बरीक यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करते हैं तथा लौट आते हैं लौटने पर ये भगवान शिव की तपस्या करते हैं। भगवान शिव उन्हें प्रसन्न होकर ३ वाण देते हैं जो पूर्ण रूप से शक्ति से परिपूर्ण होता है और पूरे संसार को तहस-नहस करने में सक्षम होता है। अब बर्बरीक श्री विजय नामक ब्राह्मण की देखभाल करते हैं। इनकी तपस्या पूरी होती है। वे शुद्ध हृदय से बर्बरीक को भी शक्ति प्रदान करते हैं। बर्बरीक सारी शक्तियों के साथ बड़ा होकर अपनी माँ कामकन्टका के पास आता है और हारने वाले की मदद करने के लिये माँ से उपदेश प्राप्त करता है। इसी समय महाभारत का युद्ध शुरू होने वाली होता है, तथा कुछ समय के नृत्य नाटिका रोक दी गयी है। प्रसिद्ध तबला वादक श्री अशोक पाण्डेय जी मंच पर विराजमान हो गये हैं। श्री अशोक पाण्डेय जी ७० देशों की यात्रा करके आये हैं तथा विदेशों में भारत का नाम खूब रोशन किये हैं। श्री पाण्डेय जी ने तबले से ही युद्ध भूमि में बजने वाली दुन्दुभि, घोड़े की टाप की आवाज की हुबहू धुन निकाली तथा अंत में सीताराम, सीताराम की धुन निकाल कर पूरे श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर दिया हैं। भक्त गण बीच-बीच में ही प्यास लगने पर ठंढे-ठंढे पेय पदार्थों का रसास्वादन करते हुये प्रसाद को भी ग्रहण कर रहे हैं। सारे लोग कतार बद्ध होकर प्रसाद ले रहे हैं। दिन से प्रारम्भ होकर लगातार अंतिम समय तक प्रसाद वितरण कार्य अविरल चल रहा है।

अब स्टेज पर पुनः नृत्य नाटिका शुरू हो गयी है। बर्बरीक कौरव व पाण्डव के युद्ध को देखने की इच्छा करता है और माँ का आदेश लेकर युद्ध

भूमि की तरफ चल देता है। बर्बरीक के आते हुये घोड़े की टाप की आवाज सुनकर पाण्डवों के बीच कौतूहल होता है। तब तक बर्बरीक वहाँ पहुँच जाता है तथा आने का प्रयोजन बताता है। वह कहता है कि जो पक्ष हारेगा मैं उसी की मदद करूँगा। भवगान श्री कृष्ण उसकी परीक्षा लेते हैं और बर्बरीक परीक्षा में सभी पीपल के पेड़ के पत्ते को छेद करके तथा श्री कृष्ण भगवान के पैरों के नीचे दबायें हुये पत्ते को भी छेद करके अपनी परीक्षा में सफल होते हैं। यह देख भगवान श्री कृष्ण चिन्तित होते हैं और पाण्डवों के बीच कहते हैं कि यह तो लड़ाई का रुख ही बदल देगा। यदि कौरव हारेंगे तो यह उनका साथ देगा। यदि पाण्डव हारेंगे तो पाण्डवों का साथ देगा। इस समस्या से मुक्ति पाने के लिये भगवान खुद बर्बरीक के पास ब्राह्मण का भेष बना करके पहुँचे। उससे वचन लेकर उससे शीश दान का वचन ले लिया। बर्बरीक ने ब्राह्मण से अपने असली रूप में आने के लिये कहा- ब्राह्मण तुरंत श्री कृष्ण बन गये। तब कृष्ण को सामने देख बर्बरीक अपना शीश काट कर भगवान श्री कृष्ण को दान कर देता है। यह बड़ा ही मार्मिक दृश्य है। सारे श्रोता, दर्शक आश्चर्यचकित एवं किंकर्तब्यविमूढ़ हैं। बड़ा ही भावुक दृश्य है। भगवान कृष्ण विलाप करते हैं। कहते हैं कि बर्बरीक की बलि बेकार नहीं जायेगी। बर्बरीक की इच्छा के अनुरूप उसका सर एक ऊँचे टीले पर रख देते हैं जहाँ से सारा कुरुक्षेत्र का मैदान दिखायी पड़ता है। लड़ाई समाप्ति के पश्चात् पाण्डव आपस में शेखी बघारते हैं। तब श्री कृष्ण बर्बरीक के पास ले जाकर सबका अंधकार दूर करते हैं। बर्बरीक ने कहा कि युद्ध भूमि में केवल भगवान श्रीकृष्ण का सुदर्शन युद्ध करता और कोई नहीं लड़ा। ऐसा सुनने के बाद वे लज्जित हो गये। भगवान कृष्ण ने अपनी ऊर्जा बर्बरीक के शिर में प्रविष्ट कर दी तथा आशीर्वाद दिया कि मेरे स्थान पर बर्बरीक के सर की पूजा होगी और यह दर्शन करने वालों की सारी मनोकामना पूर्ण करेगी। इस तरह खाटू के श्याम की कहानी का अंत हो रहा है और अब स्टेज पर परम पूज्य गुरुदेव व गुरुमाता को पगड़ी व चुनरी जो जयपुर से लाये थे उन्हें अर्पण किया गया। गुरुदेव पगड़ी में और माता जी चुनरी में ऐसे अद्वितीय रूप में शोभायमान हो रही थीं कि प्रत्यक्ष रूप में भगवान श्री विष्णु व माँ श्री लक्ष्मी साक्षात पृथ्वी पर उतर आयी हैं। ऐसे अद्भुत दृश्य को देखकर श्रद्धालु धन्य-धन्य हुये जा रहे रहे है। पूरे कार्यक्रम में ये पराकाष्ठा का दृश्य

है जो मन को रोमान्चित करके असीम ऊर्जा का संचार कर रहा है।

इसके बाद परम पूज्य गुरुदेव ने अपने आशीर्वचन से सारे श्रद्धालु लोगों को शुभ आशिष दिये तथा भगवान को प्राप्त करने तथा जीवात्मा को परामात्मा के पास लाकर हमेशा प्रसन्न रहने का उपाय बताये जो अत्यन्त ही सारगर्भित है, जो अनुकरणीय है, वन्दनीय है।

इसके बाद गुरुदेव खुद गुरुमाता के साथ खाटू के श्याम की आरती करते हैं, सारे भक्तजन आरती में शामिल होते हैं आरती पूर्ण होती है और आज के कार्यक्रम का समापन यहीं पर होता है।

परमपूज्य गुरुदेव के चरणों में सादर समर्पित

डॉ० सुबास सिंह : २७.५.०८



- संस्कार विकार को दूर करते हैं।
- संस्कृत संस्कारों की भाषा है।
- संस्कृत वेदवाणी है।
- मृत्यु जीवन का अनिवार्य सत्य है।
- कथा-श्रवण औषधि सेवन है।
- कथा दिव्यजीवी बनाती है।
- श्रीमद्भागवत जीवन को समझने एवं मृत्यु को संवार देने वाली अद्‌भुत भक्ति प्रदायिनी संहिता है।
- भागवत भगवान् का ही वाङ्मय स्वरूप है।
- बिना जाने न त्याग होता है, न बिना जाने संग्रह होता है।
- संसार समुद्र है मंथन करोगे तो अमृत-विष दोनों निकलेगा।
- जिसे कभी पाया नहीं जा सकता वो संसार है और जिसे कभी खोया नहीं जा सकता वो परमात्मा है।
- व्यक्ति सज्जन हो लेकिन वीर्यवान् भी होना चाहिए।
- रामकथा जीवन-जीने की शिक्षा है।
- सज्जनों की निष्क्रियता समाज को हानि पहुँचाती है।

भारतीय संगीत के द्वारा ईश्वरोपासना

देवर्षि नारद को उपदेश देते हुए भगवान ने स्वयं कहा है -

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

— *भगवद्गीता*

अर्थात् न तो मैं वैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न तो योगियों के हृदय में। हे नारद! मेरे भक्त जहाँ गाते हैं, वहीं मैं निवास करता हूँ।

यही कारण है कि प्राय: भारतीय सन्तों ने मोक्ष-मार्ग प्राप्ति के लिये अभी तक संगीत का ही आश्रय लिया है तथा इसी हेतु भारतीय मन्दिरों में भी संगीत के नियमित आयोजन की व्यवस्था है।

ऐतिहासिक दृष्टि से, वैदिक तथा प्राग्वैदिक काल से भारतीय संगीत का मुख्य ध्येय ईश्वरोपासना रहा है। यह तथ्य वेदों, विशेषकर सामवेद, वेदों से सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रन्थ, सूत्रों, संहिताओं और उपनिषदों—विशिष्ट रूप से छान्दोग्य उपनिषद से सिद्ध होता है। सामगान में ॐकार की महिमा को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसे ही ब्रह्म माना जाता है। सामगान के द्वारा देवताओं की स्तुति एवं उनका आह्वान किया जाता रहा है। अत: नाद योग द्वारा आत्मदर्शन का संकेत मिलता है। तत्पश्चात् संगीत के लौकिक और गान्धर्व भेद माने जाने पर भी सब प्रकार के संगीत को गान्धर्व वेद कहा गया और मुख्य लक्ष्य अध्यात्म साधना रहा। इसका दिग्दर्शन सर्वप्रथम याज्ञवल्क्य ऋषि ने तत्त्वार्थ विचार से किया और नारदीय शिक्षा में भी इसको महत्व प्रदान किया गया।

आचार्य भरत ने, संगीत शास्त्र का विस्तृत विवेचन कर संगीत के विभिन्न प्रकारों को विविध अवसरों पर प्रदर्शन के उपर्युक्त मानकर भी, उच्चकोटि के संगीत को ईश्वरोपासना के योग्य माना।

वाल्मीकि रामायण, भागवत पुराण, हरिवंश पुराण आदि ग्रंथ, बौद्ध

तथा जैन ग्रंथों के अनुसार भी उच्चतम संगीत ईश्वरोपासना का साधन ही रहा।

जयदेव, विद्यापति, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु, तुलसीदास, कबीर, मीराबाई आदि की वाणी शास्त्रीय संगीत में पारंगत गायकों द्वारा कीर्तन और भजन का रूप लेकर भी संगीत के माध्यम से अध्यात्म साधना तथा आत्मदर्शन का मार्ग बनकर भारत के कोने-कोने में फूली-फली और फैली। अत: इन सभी संत कवियों की रचनाएँ ईश्वर-भक्ति सम्बन्धी एवं आराधना स्वरूप हैं। ईश्वर भक्ति के लिए संगीत साधन-रूप है। भारतीय विचार-परम्परा में इसकी मान्यता है। योग-प्राणायाम, मन्त्रोच्चारण तथा क्रियाओं द्वारा, शुद्ध ब्रह्म अथवा नादब्रह्म की उपासना करता है। अत: अवश्य ही यह सम्भावना है कि आहतनाद से उत्पादित वाह्य संगीत के स्वर लय सिद्ध, राग, आलाप आदि का प्रभाव मनुष्य के स्वयं शासित मज्जा ज्ञानतंतु गतकायव्यूह (autonomous nervous system) पर तथा आध्यात्मिक साधनाओं की दशाओं में (spiritual states) रसानुभूति से होता है। इन अवस्थाओं में योगी द्वारा अलौकिक संगीत का सृजन भी बाह्य जगत में व्याप्त प्रतीत होता है। अत: नाद योगी तथा अन्य योगी के लिए कल्पना शक्ति, विचार शक्ति, नादश्रुति जप लय सिद्ध मंत्रशक्ति आदि बिंदु रूप से पूर्ण ब्रह्म है। देवी, रामकृष्ण आदि उसी ब्रह्म के साकार स्वरूप (symbols) हैं, दृष्टि, श्रवण तथा अनुभव से प्राप्त होकर।

संगीत के अतिरिक्त अन्य कलाओं तथा विविध मार्गों द्वारा ब्रह्मानुभव प्राप्त होता है पर भारतीय संगीत का आध्यात्मिक पंक्ष, मनुष्य के अन्त:करण तथा ब्रह्माण्ड, आकाश में स्थित 'ध्वनि, ज्योतिशक्ति अथवा नादब्रह्म' से स्वाभाविक रूप में साक्षात्कार कराने में समर्थ है। मनुष्य जीवन मुक्त (Liberated soul) हो जाता है। क्योंकि भारतीय संगीत के मूल में आध्यात्मिकता निहित है। संगीत की तीनों विधाओं (गायन-वादन-नृत्य) का सम्बन्ध किसी न किसी देवी-देवता से होने के कारण ही यह ईश्वर उपासना का सशक्त माध्यम प्राचीन काल से आज तक बना हुआ है।

कु. ऋचा शर्मा (सितार)

संगीत एवं मंच कला संकाय गायन विभाग

शोध-छात्रा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संयम

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचऽमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम्।।

धर्म के दस लक्षणों में तृतीय स्थान पर हैं दम अर्थात् संयम। मानव जीवन में संयम की सबसे अधिक आवश्यकता है। जिसके पास संयम नहीं है वह व्यक्ति पशु के समान होता है। आहार, विहार, आनन्द, चिन्तन, परिश्रम, स्नेह, मनोरंजन आदि प्रत्येक क्षेत्र में संयम पालन करके ही व्यक्ति उसका पूरा लाभ एवं आनन्द प्राप्त कर सकता है।

संयम केवल दूसरे को बताने के लिए नहीं, अपितु आत्म-संयम ही वास्तव में संयम है। आत्म-संयम में भी वाणी का संयम सर्वाधिक अपेक्षित है। शास्त्रों में लिखा है-

जितात्मा सर्वार्थैः संयुज्येत।

जिसने अपने आपको जीत लिया और वाणी संयम कर लिया उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

चाण्क्य नीति में लिखा है- **इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत् पण्डितो नरः। देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्।।**

बुद्धिमान पुरुष को यह गुण बगुले से सीखना चाहिए कि अपनी सारी इन्द्रियों को नियन्त्रण में करके तथा स्थान, समय और अपनी शक्ति का अनुमान लगाकर कार्यसिद्धि के लिए जुट जाना चाहिए। यही आत्मसंयम कहलाता है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तुम जब अपनी प्रवृत्तियों पर संयम नहीं रखोगे, कभी सफल नहीं हो पाओगे और सदा ऊहापोह में लगे रहोगे। महाकवि कालिदास ने प्रख्यात नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में महर्षि कण्व के द्वारा कहलाया है कि ऋषि संयम के धनी होते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जिसके पास संयम का धन है वह ऋषि होता है। ऋषि होने का अर्थ है आर्षद्रष्टा या दूरद्रष्टा। सामान्य व्यक्ति एक-दो, दस-बीस वर्ष की बात सोचता है, परन्तु ऋषि बहुत दूर तक की और वास्तविक

बात सोचते हैं। क्षणिक लाभ के लिए सोचने वाले व्यक्ति सामान्य श्रेणी के लोग होते हैं। यह सोच शास्त्राध्ययन, सत्संगति, विचार-विमर्श अथवा बड़ों की आज्ञा पालन से विकसित होती है। मनमानी करना, उद्दण्ड होना, अभिमान करना, किसी की बात न मानना, संयमी होने में बाधक तत्व हैं। संयम के लिए कुछ नहीं करना पड़ता केवल स्वयं को देखना होता है। स्वयं को देखने का अर्थ है अपनी सामर्थ्य, सीमा और अवस्था को पहचानना। भ्रम में न रहकर, किसी के बहकावें में न आकर, अपनी सामर्थ्य और सीमा में रहकर आगे बढ़ना आत्मसंयमी का लक्षण है। अपने मन, वचन, कर्म तीनों पर नियन्त्रण एवं दृष्टि रखना विजय के साधन हैं। आदिशंकराचार्य, विवेकानन्द, रमणमहर्षि, रामानुजन् जैसे महापुरुषों और विद्वानों ने आत्मसंयम का सहारा लेकर ही अपनी आत्मा को इतनी ऊँचाई तक पहुँचा दिया जहाँ पहुँचना लोगों के लिए स्वप्न है।

डॉ० रवीन्द्र नागर

आँखों में क्या है

पिता की आँखों में – फर्ज
माता की आँखों में – ममता
भाई की आँखों में – प्यार
बहिन की आँखों में – स्नेह
अमीर की आँखों में – घमण्ड
गरीब की आँखों में – आशा
मित्र की आँखों में – सहयोग
शत्रु की आँखों में – प्रतिशोध
सज्जन की आँखों में – दया
शिष्य की आँखों में – आदर
गुरु की आँखों में – दिव्य ज्योति



एक चीज़

जीत के लिए कोई चीज़ है – प्रेम
पीने के लिए कोई चीज़ है – क्रोध
खाने के लिए कोई चीज़ है – गम
देने के लिए कोई चीज़ है – दान
दिखाने के लिए कोई चीज़ है – दया
लेने के लिए कोई चीज़ है – ज्ञान
कहने के लिए कोई चीज़ है – सत्य
फेंकने के लिए कोई चीज़ है – ईर्ष्या
छोड़ने के लिए कोई चीज़ है – मोह



अथ गणपत्यथर्वशीर्षं

ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्ताऽसि। त्वमेव केवलं धर्ताऽसि। त्वमेव केवलं हर्ताऽसि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्माऽसि। त्वं साक्षादात्माऽसि नित्यम्।।१।।
ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि।।२।। अव त्वं माम्। अव वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारं। अव धातारम्। अवाऽनूचानमवशिष्यम्। अव पश्चात्तात्। अव पुरस्तात्तात्। अवोत्तरात्तात्। अव दक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्। अवाधरात्तात्। सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात्।।३।।
त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयस्त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयस्त्वं सच्चिदानन्दाऽद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्माऽसि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि।।४।।
सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगददिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलो-ऽनिलो नभः। त्वं चत्वारि वाक्पदानि।।५।।
त्वं गुणत्रयातीतः। त्वमवस्थात्रयातीतः। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं मूलाधार-स्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्र-मास्त्वं ब्रह्म भूर्भूवः स्वरोम्।।६।।
गणादीन् पूर्वमुच्चार्य वर्णादिस्तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः। अर्धेन्दुलसितम्। तारेण रुद्धं। एतत्तवमनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो

मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चाऽन्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तर-रूपम्। नादः सन्धानम्। संहिता सन्धिः। सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः। निचृद् गायत्रीछन्दः। गणपतिर्देवता। ॐ गं गणपतये नमः।।७।।

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।८।।

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्।।९।।
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्त-गन्धाऽनुलिप्ताङ्गं रक्त पुष्पैः सुपूजितम्।।१०।।
भक्ताऽनुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्।।११।।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।।१२।।

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः।।१३।।

एतदथर्वशीर्षं योऽधीते स ब्रह्मभूयाय कल्पते। स सर्वविघ्नैर्न बाध्यते। स सर्वतः सुखमेधते। स पञ्चमहापातकोपपातकात् प्रमुच्यते। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति। धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति। इदमथर्वशीर्षमशिष्याय न देयम्। यो यदि मोहाद्दास्यति स पापीयान् भवति। सहस्रावर्तनाद्यं यं काममधीते तं तमनेन साधयेत्। अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाग्मी भवति। चतुर्थ्यामनश्नञ्जपति स विद्यावान् भवति। इत्यथर्वणवाक्यम्। ब्रह्माद्याचरणं विद्यात्। न बिभेति कदाचनेति। यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजैर्यजति स यशोवान् भवति। स मेधावान् भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स

वाञ्छितफलमवाप्नोति। यः साज्यसमिद्भिर्यजति स सर्वं लभते स सर्वं लभते। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग्ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति। सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासंन्निधौ जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति। महाविघ्नात् प्रमुच्यते। महापापात् प्रमुच्यते। महादोषात् प्रमुच्यते। स सर्वविद्भवति। स सर्वविद्भवति। स सर्वविद्भवति य एवं वेद।। ॐ भद्रङ्कर्णेभिरिति शान्तिः।।

।।इति श्रीगणपत्यथर्वशीर्षम्।।

◆

संतान गणपति स्तोत्र

ॐ नमोऽस्तु गणनाथाय सिद्धिबुद्धियुताय च।
सर्वप्रदाय देवाय पुत्र वृद्धि प्रदाय च।।१।।
गुरुवराय गुरवे गोप्त्रे गुह्य सिताय ते।
गोप्याय नोदिताशेषभुवनाय चिदात्मने।।२।।
विश्वमूलाय भव्याय विश्वसृष्टिकराय ते।
नमो नमस्ते सत्याय सत्यापूर्णाय शुण्डिने।।३।।
एकदंताय शुद्धाय सुमुखाय नमो नमः।
प्रपन्नजन पालाय प्रकृतार्तिविनाशिने।।४।।
शरणं भव देवेश सन्ततिं सुदृढां कुरु।
भविष्यन्ति च ये पुत्रा मत्कुले गणनायक।।५।।
ते सर्वे तव पूजार्थे निरताः स्युर्वरोमतः।
पुत्रप्रदमिदं स्तोत्रं सर्व सिद्धि प्रदायकम्।।६।।

।।इति सन्तान गणपति स्तोत्रम्।।

◆

श्रीसङ्कष्टनाशनगणेशस्तोत्रम्

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम्।
भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुष्कामार्थसिद्धये।।१।।
प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम्।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम्।।२।।
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च।
सप्तमं विघ्नराजेन्द्रं धूम्रवर्णं तथाष्टमम्।।३।।
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम्।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम्।।४।।
द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं परम्।।५।।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् मोक्षार्थी लभते गतिम्।।६।।
जपेद् गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत्।
संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः।।७।।
अष्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत्।
तस्य विद्या भवेत् सर्वा गणेशस्य प्रसादतः।।८।।

।।श्रीनारदपुराणे सङ्कष्टनाशन नाम गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम्।।



प्रभाकर नमोऽस्तु ते

(श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टकम्)

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते।।१।।
सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम्।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।२।।
लोहितं रथमारूढं सर्वलोकपितामहम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।३।।

त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।४।।
बृंहितं तेजपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च।
प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।५।।
बन्धूकपुष्पसंकाशं हारकुण्डलभूषितम्।
एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।६।।
तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेजःप्रदीपनम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।७।।
तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञानविज्ञानमोक्षदम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।८।।

इति श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टकं सम्पूर्णम्।



विश्वनाथाष्टकम्

गङ्गातरङ्गरमणीयजटाकलापं गौरीनिरन्तरविभूषित वामभागम्।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।१।।
वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं वागीशविष्णु-सुरसेवित पादपीठम्।
वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।२।।
भूताधिपं भुजगभूषणभूषिताङ्गं व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम्।
पाशाङ्कुशाभयवरप्रदशूलपाणिंवाराणसीपुरपतिंभज विश्वनाथम्।।३।।
शीतांशुशोभितकिरीटविराजमानं भालेक्षणानलविशोषितपञ्चबाणम्।
नागाधिपारचितभासुरकर्णपूरं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।४।।
पञ्चाननं दुरितमत्तमतङ्गजानां नागान्तकं दनुजपुङ्गवपन्नगानाम्।
दावानलं मरणशोकजराटवीनां वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।५।।
तेजोमयं सगुणनिर्गुणमद्वितीय-मानन्दकन्दमपराजितमप्रमेयम्।
नागात्मकं सकलनिष्कलमात्मरूपं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।६।।
आशां विहाय परिहृत्य परस्यनिन्दां पापे रतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ।
आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।७।।

रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं वैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम्।
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।८।।
वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः।
विद्या श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम्।।९।।
विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते।।१०।।



ज्योतिर्लिङ्गों के द्वादशतीर्थ

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममरेश्वरम्।।
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये।।
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति।।
एतेषां दर्शनादेव पातकं नैव तिष्ठति।
कर्मक्षयो भवेत्तस्य यस्य तुष्टो महेश्वरः।।



श्रीसूक्त

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।१।।
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्।।२।।
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्।।३।।

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारां मार्द्रांज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्।।४।।
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्ती श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
ता पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे।।५।।
आदित्यवर्णेतपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः।।६।।
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे।।७।।
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्।।८।।
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।।९।।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।।१०।।
कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।।११।।
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत बस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।।१२।।
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरणमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।१३।।
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।१४।।
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्।।१५।।
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्।।१६।।



भगवती त्रिपुरसुंदरी का ध्यान

लौहित्यनिर्जितजपाकुसुमानुरागां पाशाङ्कुशे धनुरिषूनपि धारयन्तीम्।
ताम्रायतामरुणमाल्यविशेषशोभां ताम्बूलपूरितमुखीं त्रिपुरां नमामि।।

श्रीमच्छंकराचार्यविरचित आनन्दलहरी

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।१।।

हे माँ! मैं अकिंचन कैसे आपकी महामहिमा का बखान करूँ? आपकी ही शक्ति से शक्तिमान होकर शिव जगत की रचना कर पाते हैं। आपकी शक्ति का अवलम्ब न हो तो शिव स्पन्दन रहित ही रहें। हरि (विष्णु) हर (शंकर) और विरंचि (ब्रह्मा) की आराध्या माता, मैं तुच्छ प्राणी, तुम्हारी वंदना की सामर्थ्य कहाँ से पाऊँ? ॥१॥

तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरुहभवं
विरिञ्चिः संचिन्वन्विरचयति लोकानविकलम्।
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम्।।२।।

माँ! आपके चरण-कमल से उत्पन्न छोटे से रजकण का सहारा पाकर ब्रह्मा ने लोकों की रचना की। शेष रूप धारी सहस्रशीर्ष विष्णु आपकी ही शक्ति से पृथ्वी को धारण करते हैं और आपकी ही चरण धूलि को भोलेनाथ भस्म के रूप में अपने शरीर में लगाते हैं। ॥२॥

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दस्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवति।।३।।

माँ! अविद्या के अंधकार से ग्रसित हृदयों को प्रकाशित करने वाली आप ही हो। जड़ एवं नीरस प्राणियों के भीतर चेतना शक्ति एवं मधुर मकरंद का संचार आप ही करती हो। दरिद्रों के लिए तो आप चिन्तामणि की माला

की तरह तत्काल क्लेशहारिणी हो। जन्म-मरण के बंधन में पड़े भव सागर में डूबते प्राणियों का तो आप उसी तरह उद्धार कर देती हो जैसे वाराह अवतार में भगवान ने अपने दाँतों से पकड़कर पृथ्वी का उद्धार किया था। ॥३॥

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ।।४।।

माँ! आपके सिवाय दूसरे देवगण अपने हाथों से अभय और वरदान की मुद्रा प्रदर्शित करके आश्वस्ति प्रदान करते हैं। आप ही एक ऐसी हो जो अभय एवं वरदान की मुद्राओं का अभिनय नहीं करती। आपके चरण-कमलों की शरण में जो आ गया उसकी इच्छाओं की पूर्ति की तो बात ही क्या है, वह बिना माँगे ही अपनी कामना से अधिक पा जाता है। लोकों को भय से त्राण प्रदान करने तथा सकल कामना-पूर्ति में तुम्हारे चरण ही सहज निपुण हैं। ॥४॥

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम्।।५।।

शरणागतों को सौभाग्य प्रदान करने वाली माता! आपकी आराधना के बल पर ही विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके कामरिपु (शंकर) के चित्त में भी क्षोभ उत्पन्न कर दिया। अशरीरी कामदेव भी आपकी आराधना और कृपा से ही अपनी प्रिया रति के नेत्रों का आलिंगन प्राप्त करते हुए बड़े-बड़े त्यागी-विरागी मुनियों के हृदय में भी महामोह पैदा करने में समर्थ होता है। ॥५॥

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्च विशिखाः
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः।
तथाऽप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपा-
मपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते।।६।।

हिमालयसुता माता पार्वती! आपकी ही रंचमात्र कृपा का परिणाम है कि अशरीरी काम जगद्विजय कर लेता है। आपकी कृपा न हो तो उसके पास अपना क्या बल है? बेचारे का धनुष पुष्पों का है जिसकी रस्सी भौरों से बनी हुई है। पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध) रूपी पाँच ही वाण उसके पास हैं। वसंत ऋतु उसका मजबूत सहायक है और मलयाचल की शीतल-मंद-सुगंध समीर उसका रथ है। ऐसी साधन-सामग्री को लेकर वह अकेला सभी को जीत लेता है तो इसमें आपकी शक्ति ही हेतु है। ॥६॥

क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तननता
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना।
धनुर्वाणान् पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका।।७।।

हे शिवशक्तिभूता भगवती! माता! हमें अपने शरद कालीन पूर्ण चंद्र के समान कान्तिमान निर्मल स्वरूप का दर्शन प्रदान कीजिये। मधुर ध्वनि करने वाली घुँघरुओं से युक्त मेखला से शोभित कटि प्रदेश, हाथी के बच्चे के मस्तक पर उभड़े हुए दो कुंभों के समान स्तनों से शोभित वक्ष प्रदेश तथा क्षीण मध्य भाग वाली माता! हाथों में धनुष, वाण, पाश, अकुंश धारण किये हुए आप सदैव हमारे सम्मुख रहें। ॥७॥

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।८।।

हे माँ! वे अतिशय पुण्यात्मा विरले जीव धन्य हैं जो आपके इस दिव्य स्वरूप का स्मरण-भजन करते हैं- अमृत का समुद्र- उसके मध्य कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरा हुआ मणिद्वीप- उसमें नीपवृक्षों का उपवन- उसके बीच चिन्तामणियों द्वारा निर्मित मंदिर- उसमें त्रिकोणाकृति मंच— उस पर बिछाई गई शैया पर शिव के साथ विराजमान चिदानंद लहरी शिवशक्ति स्वरूपा आप- हमारी माँ! ॥८॥

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।९।।

सहस्रार पद्म (सहस्रार चक्र) में पति (शिव) के साथ एकान्त विहार करने वाली जगन्माता! आपके मूलाधार चक्र में पृथ्वी, स्वाधिष्ठान में अग्नि, मणिपूर में जल, अनाहत में वायु, विशुद्ध चक्र में आकाश तथा भौंहों के मध्य में मनस्तत्व- इस प्रकार समस्त सृष्टि की सम्पूर्ण शक्ति आपके भीतर विद्यमान है। ॥९॥

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।।१०।।

दिव्यातिदिव्य अलौकिक शक्तिसमन्विता माता! आपके दिव्य युगल चरणों के मध्य अमृत की अजस्र धारा प्रवाहित होती है जो समस्त सृष्टि प्रपंच को अभिसिंचित करती है। पुनः यही धारा छहो चक्रों को रससिक्त करते हुए अपनी भूमि अर्थात् मूलाधार पर पहुँच कर सर्पिणी के सदृश कुंडल मारे हुए कुल-कुंड (कुंडलिनी) में प्रसुप्त हो जाती है। ॥१०॥

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रत्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः।।११।।

हे माता! चार श्रीकण्ठ और पाँच शिवयुवतियाँ- इन नौ मूल प्रकृतियों के द्वारा आपके निवास के ४४ त्रिकोण निर्मित होते हैं जो शंभु के बिन्दुस्थान से अलग हैं। वे तीन वृत्तों और तीन रेखाओं से युक्त हैं तथा उनमें ८ और १६ दल विराजमान हैं।

(माता के निवास का यह चित्रण श्रीचक्र में समाहित सृष्टियोग के अनुकूल है।) ॥११॥

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतयः।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम्।।१२।।

हिमाचलसुता माता! सामान्य कवियों की तो बात क्या, ब्रह्मा और विष्णु जैसी प्रतिभाओं की कल्पना भी आपके सौन्दर्य की तुलना प्रस्तुत करने में यत्किंचित् ही सफल हो सकती है। मन से आपके स्वरूप का उत्कंठापूर्वक ध्यान करते हुए देव-रमणियाँ सहज ही बड़े-बड़े तपस्वियों के लिये दुर्लभ शिव-सायुज्य प्राप्त कर लेती हैं। ॥१२॥

वरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः।
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्त्रस्तसिचया
हठात्त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः।।१३।।

हे माता! आपकी किंचित् कृपा-दृष्टि से वृद्ध, जर्जर, कुरूप और नेत्रहीन प्राणी में ऐसी आकर्षण शक्ति का संचार हो जाता है कि उस पर आसक्त होकर सैकड़ों युवतियाँ उसके पीछे दौड़ने लगती हैं और उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहता कि कब उनकी वेणी के बंध खुल गये, कुचों को आवृत करने वाली चोली फट गई, मेरवला टूट गई या साड़ी शरीर से उतर गई। ॥१३॥

क्षितौ षट्पञ्चाशद्द्विसमधिकपञ्चाशदुदके
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले।
दिवि द्विःषट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरिति ये
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम्।।१४।।

हे माता! पृथ्वी में ५६, जल में ५२, अग्नि में ६२, वायु में ५४, आकाश में ७२ और मन में ६४ किरणें बतलाई गई हैं। लेकिन तुम्हारे चरण कमलों में विद्यमान किरणें उन सबसे बढ़कर हैं। ॥१४॥

शरज्ज्योत्स्नाशुद्धां शशियुतजटाजूटमुकुटां
वरत्रासत्राणस्फटिकघटिकापुस्तककराम्।

सकृन्नत्वा नत्वा कथमिव सतां संनिदधते
मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणाः फणितयः।।१५।।

शरद पूर्णिमा की चंद्रिका के समान शुभ्रवर्णा, जटाजूट रूपी मुकुट में विराजमान द्वितीया के चंद्र से सुशोभित, दो हाथों द्वारा अभय और वरदान की मुद्रा तथा दो हाथों में स्फटिकमणि की माला तथा पुस्तक धारण करने वाली माता! जो एक बार भी आपके शरणागत होकर आपको नमन नहीं करता उस कवि की वाणी में मधु, दुग्ध और द्राक्षारस की मधुरिमा का संचार कैसे संभव है? अर्थात् सर्वथा असंभव है। ॥१५॥

कवीन्द्राणां चेतःकमलवनबालातपरुचिं
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम्।
विरिञ्चिप्रेयस्यास्तरुणतरशृङ्गारलहरी-
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी।।१६।।

हे माता! बुद्धिमान वही है जो आपको भजता है। कवींद्रों का चित्त रूपी कमलवन उदयकालीन सूर्य के समान ज्योतियुक्ता अरुणास्वरूपा आपकी कृपा से ही विकसित होता है। तभी ब्रह्मा की प्रिया (सरस्वती) की शृंगार-लहरी से उत्पन्न उनकी गंभीर वाणी सत्पुरुषों का अनुरंजन करने में समर्थ होती है। ॥१६॥

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभि-
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयति यः।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गिरुचिभि-
र्वचोभिर्वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः।।१७।।

हे माता! वशिनी आदि सावित्रियों सहित मानो चंद्रकांत मणि की शिला द्वारा गढ़ी हुई आपकी देदीप्यमान छवि का ध्यान करने वाला कवि सहज ही अत्युत्कृष्ट काव्य की रचना करने लगता है। उसके सुंदर काव्य में वाग्देवी के मुखकमल का माधुर्य आमोदकर होता है। ॥१७॥

तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीसरणिभि-
र्दिवं सर्वामुर्वीमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः।
भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयनाः
सहोर्वश्या वश्याः कति कति न गीर्वाणगणिकाः।।१८।।

हे माता! जो दिव्य लोकों तथा समस्त पृथ्वी को आपकी सूर्य रश्मियों की तरह तेजोद्दीप्त कान्ति से मंडित देखता तथा आपका स्मरण करता है, वन की हिरणियों जैसे चंचल नेत्रों वाली उर्वशी जैसी दिव्य अप्सरायें भी सहज ही उसके वशीकृत रहती हैं। ॥१८॥

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्।।१९।।

हे शिवप्रिया! माता!! जो कामकलास्वरूपा आपका ध्यान करता है वह संसार की सामान्य स्त्रियों की तो बात ही क्या, सूर्य और चंद्र रूपी स्तनों वाली त्रिलोकी को भी वशीकृत कर लेता है। उक्त ध्यान इस प्रकार प्रकार है- बिंदु मुख है, उसके नीचे दोनों स्तनों के रूप में दो बिन्दु तथा उसके नीचे हकार के अर्ध भाग का ध्यान करे। ॥१९॥

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरम्बामृतरसं
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव
ज्वरप्लुष्टान् दृष्ट्या सुखयति सुधाधारसिरया।।२०।।

हे माता! अपने दिव्य अंगों से अमृतरससिक्त किरणों को बिखेरती एवं चंद्रकांत मणि जैसी देदीप्यमान आपकी मूर्ति को जो अपने हृदय में बसाता तथा स्मरण करता है वह गरुड़वत् सर्पों का अभिमान चूर कर देता तथा अमृत नाड़ी की सिद्धि द्वारा वह तापतप्त मनुष्यों के लिए सुखकर हो जाता है। ॥२०॥

तटिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्।
महापद्माटव्यां मृदितकलमायेन मनसा
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम्।।२१।।

हे माता! महान वे ही हैं जो आपकी विद्युत् रेखा जैसी क्षीण किंतु सूर्य, चंद्र और अग्नि तीनों की कला से परिपूर्ण छवि को छह कमलों से परे

विद्यमान महाकमल के महावन में विशुद्ध मन द्वारा देखते तथा परमानंद की लहरी की परमानुभूति करते हैं। ॥२१॥

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम्।।२२।।

हे माता! जो प्राणी दास्य भाव से आपके समक्ष केवल इतना ही निवेदन करना चाहता है- 'हे भवानी! आप इस दास को अपनी करुणापूर्ण दृष्टि का प्रसाद दे दें।' उसके मुख से 'भवानी आप' इतना शब्द निकलते ही उसे अपना सायुज्य प्रदान करके आप ऐसी कृपा की वर्षा कर देती हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र को भी उसके समक्ष नतमस्तक होना पड़ता है। ॥२२॥

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा
शरीरार्धं शम्भोरपरमपि शङ्के हृतमभूत्।
यदेतत्त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं
कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमुकुटम्।।२३।।

हे भगवती! कहा जाता है कि भगवान शंकर के अर्द्धांग को आपने ग्रहण कर लिया किंतु लगता यह है कि उनके संपूर्ण शरीर पर आपका ही एकछत्र अधिकार है। आपकी ही लालिमा उनके सर्वांग को अरुणाभ बनाती है, दूसरे आपके स्तन के भार से वामांग कुछ झुक जाने के कारण शिव का दक्षिण भाग भी स्वभवतः झुका दिखलाई पड़ता है। तीन नेत्र और केशों के ऊपर मुकुटवत् सुशोभित द्वितीया का चंद्र तो आप दोनों को सुशोभित करता ही है। यह समझना ही संभव नहीं है ये दोनों किसके हैं। ॥२३॥

जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते
तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति।
सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृहणाति च शिव-
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः।।२४।।

जगदम्बा! आपके भौंहों के रंचमात्र संकेत पर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जगत की रचना, पालन और संहार में प्रवृत्त हो जाते हैं। ईश्वर तो इन सबसे तटस्थ रहता ही है। शिव जिनके नाम के पहले 'सदा' लगा हुआ है अर्थात्

जो सदाशिव हैं वे आपकी आज्ञा और शक्ति के सहारे सदा सबपर कृपा किया करते हैं। ॥२४॥

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे
भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता।
तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमुकुटाः।।२५।।

हे शिवे! आपके चरणों की पूजा से ही वस्तुतः तीनों गुणों से समन्वित तीनों देव- ब्रह्मा, विष्णु और महेश- इन सबकी पूजा भी अनायास हो जाती है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है क्योंकि ये तीनों आपके मणिजटित चरणपीठ के निकट हाथ जोड़े खड़े रहते हैं और इसी से उनके मुकुटों की शोभा बढ़ती है। ॥२५॥

विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम्।
वितन्द्री माहेन्द्री विततिरपि संमीलितदृशा
महासंहारेऽस्मिन् विहरति सति त्वत्पतिरसौ।।२६।।

हे सती! महप्रलय के समय ब्रह्मा की आयु समाप्त हों जाती है (पंचत्व प्राप्त कर लेते हैं), विष्णु अपने पालन-कर्म से विरत हो जाते हैं, यमराज भी अवकाश प्राप्त होते हैं और कुबेर का भी निधन हो जाता है। हजार नेत्रवाले तंद्रारहित कहे जाने वाले महेंद्र आँखें बंद कर लेते हैं। फिर भी आपके पति सदाशिव तो उस महाप्रलय में भी आनन्द-विहार करते रहते हैं (यह आपकी महामहिमा का प्रभाव है।) ॥२६॥

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।।२७।।

हे माता! ऐसी कृपा कीजिये कि मैं जो कुछ बोलता हूँ, सब आपकी स्तुति बन जाय, जितने कर्म करता हूँ सभी आपकी उपासना की मुद्रायें हो ज़ायँ, मेरा चलना-फिरना आपकी प्रदक्षिणा हो जाय, भोजन-पानी आपके निमित्त दी गई आहुति तथा मेरा शयन आपके लिये दंडवत् प्रणाम सदृश

बन जाय। जो कुछ भी भोगोपभोग मैं ग्रहण करूँ सब आपको समर्पित हो तथा मेरे सारे कृत्य आपकी पूजा-पद्धति के अंग बन जायँ। ॥२७॥

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरिणीं
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः।
करालं यत्क्ष्वेलं कवलितवतः कालकलना
न शंभोस्तन्मूलं तव जननि ताटङ्कमहिमा।।२८।।

हे माता! ब्रह्मा और इंद्र आदि सभी देवताओं ने शत्रु, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के भय का नाश करने वाले अमृत का पान किया था फिर भी उनका जीवन सीमित है। दूसरी ओर विष पीने वाले शंभु का कभी अंत नहीं होता और यह आपके ताटंक (कान का आभूषण) के सान्निध्य की ही महिमा है। ॥२८॥

किरीटं वैरिञ्चं परिहर पुरः कैटभभिदः
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारिमुकुटम्।
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते।।२९।।

हे माता! ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि देवगण आपके चरणों में शीश नवाने के लिये प्रायः आते रहते हैं। उसी बीच जब भगवान शंकर भवन में पधारते हैं तो प्रायः आपकी परिचारिकाएँ उन्हें सावधान करती हैं- सामने ब्रह्मा के मुकुट से बचकर आगे बढ़ें, देखिये, कैटभ का संहार करने वाले विष्णु के मुकुट की ठोकर न लगे, इंद्र के मुकुट से बचकर निकलें-आदि। माँ आपके इस वैभव की जय हो। ॥२९॥

स्वदेहोभूताभिर्घृणिभिरणिमाद्याभिरभितः
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः।
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतः
महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम्।।३०।।

हे सतत सेव्ये! वरेण्ये! नित्ये! माता! अणिमा आदि सिद्धियों की किरणें सदैव आपके प्रभामंडल से ज्योतित होती रहती हैं। इन किरणों से घिरा आपका जो भक्त आपकी स्तुति करते हुए 'त्वां अहम्' इतने ही शब्दों का शुद्ध समर्पित भाव से उच्चारण कर पाता है उसकी आरती संवर्त अग्नि

(जो नाश के लिए प्रसिद्ध है) उतारे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? ॥३०॥

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्।।३१।।

हे माता! पशुपति भगवान शंकर ने स्वयं ही पूरे मनोयोग से विविध प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले ६४ तंत्रों का संसार में प्रसार किया और फिर आपके आग्रह पर सकल पुरुषार्थों और सिद्धियों की उपलब्धि कराने वाले आपके स्वतंत्र तंत्र (श्रीविद्या) की उन्होंने अवतारणा की। ॥३१॥

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।।३२।।

हे माता! शिव, शक्ति, काम और क्षिति, इसके बाद रवि, शीत किरण (चंद्र), स्मर (काम), हंस और चक्र, इसके बाद परा, मार और हरि इन तीनों के अंत में हृल्लेखा जोड़कर आपके नाम के अवयव स्वरूप वर्णों का आपके साधक भजन किया करते हैं। ॥३२॥

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो-
र्निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः।
भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलयाः
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतैः।।३३।।

हे नित्ये! महान ऐश्वर्य के आकांक्षी आपके कतिपय उपासक स्मर (काम) योनि (त्रिकोण) और लक्ष्मी इन तीनों को आपके मंत्र के पहले लगा कर चिन्तामणि की अक्षमाला पर जप करते तथा त्रिकोण हवनकुंड में गाय के घी की धारा के साथ सैकड़ों आहुतियाँ अर्पित करते हैं। ॥३३॥

शरीरं त्वं शंभोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम्।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया
स्थितः सम्बन्धो वां समरसपरानन्दपरयोः।।३४।।

हे भगवती! आप शंभु से अभिन्न हैं, उनके साक्षात् शरीर स्वरूप हैं जिसके वक्षस्थल पर सूर्य और चंद्रमा रूपी स्तन विराजमान हैं। आपकी आत्मा भव की आत्मा है। पराशक्ति और आनंद (शिव) दोनों एकत्र समरस हैं तथा शेषी और शेखी की भाँति नित्य सम्बद्ध हैं। ॥३४॥

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन बिभृषे।।३५।।

हे शिवप्रिया! माता! आप ही मन हैं, आप ही आकाश हैं, आप ही वायु हैं तथा आप ही अग्नि हैं जिसका सारथी वायु बताया जाता है। आप ही जल हैं और आप ही भूमि भी हैं। आप से बाहर कुछ भी नहीं है। सारे विश्व के कारण आप हैं और सब कुछ आपका ही रूप है। आपने ही अपने आप को चिदानंदाकार विश्व वपु अर्थात् विराट् रूप में अभिव्यक्त किया है। ॥३५॥

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शंभुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।
यमाराध्यन् भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये
निरालोकेऽलोके निवसति हि भालोकभुवने।।३६।।

हे माता! आपके आज्ञा चक्र में करोड़ों सूर्य-चंद्र के तेज से संयुक्त परम शिव स्थित हैं जिनका वामांग, पराचिति अर्थात् आप से अभिन्न है। मैं इसी रूप में उनकी वंदना करता हूँ। उनकी भक्ति सहित आराधना करने वाले उस प्रकाशमान दिव्य लोक में निवास प्राप्त करते हैं जो सूर्य, चंद्र और अग्नि के प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखते तथा जो सभी प्रकार के आतंकों से मुक्त रहते हैं। ॥३६॥

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम्।
ययोः कान्त्या यान्त्याः शशिकिरणसारूप्यसरणे-
र्विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसित चकोरीव जगती।।३७।।

हे माता! आपके विशुद्ध चक्र में आकाश तत्व के अधिष्ठाता शुद्ध

स्फटिकवत् निर्मल शिव तथा उनसे अभिन्न शक्ति की मैं सेवा करता हूँ जिनकी चंद्र किरणों सदृश कांति से जगत का अन्तस्तम दूर हो जाता है तथा जिसकी अनुभूति से वह चकोरी की तरह आनंदित होता है। ॥३७॥

समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्।
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति-
र्यदादत्ते दोषागुणमखिलमद्भ्यः पय इव।।३८।।

हे माता! आपके हृदय प्रदेश में विराजमान हंस के उस जोड़े (हं=शिव, स=शक्ति) का मैं ध्यान करता हूँ जो समस्त ज्ञान का मूल है तथा जिनका चिन्तन महान साधक किया करते हैं। इसी हंसद्वय की वार्ता से सभी १८ विद्याएँ अस्तित्ववान हुईं और इसी में वह शक्ति है जो दोषों को अलग छोड़कर गुणों का उसी प्रकार ग्रहण कर ले जैसे हंस जल को अलग छोड़कर दूध ग्रहण कर लेता है। ॥३८॥

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं
तमीडे संवर्तं जननि महतीं तां च समयाम्।
यदालोके लोकान्दहति महति क्रोधकलिते
दयार्द्रा या दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति।।३९।।

हे माता! आपके स्वाधिष्ठान चक्र में वर्तमान अग्नितत्व का नियामक संवर्त तथा ममतामयी समया देवी दोनों की मैं वंदना करता हूँ। जब संवर्ताग्नि क्रोधपूर्वक लोकों को जलाता है, उस क्षण समया देवी की दयामयी दृष्टि शीतलता का संचार करती है। ॥३९॥

तटित्त्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया
स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्।
तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनम्।।४०।।

हे माता! आपके मणिपूर चक्र के शरणागत श्याममेघ तथा सौदामिनी के रूप में मैं शिवशक्ति का ध्यान करता हूँ। श्याम मेघों के कारण जब लोक अन्धकारमय हो जाते हैं, सौदामिनी (बिजली) की चमक रास्ता दिखलाते हुए अपनी इन्द्र धनुषी आभा बिखेरती है। आपकी ही शक्ति है जो अग्नि

और सूर्य के ताप से संतप्त धरती पर शीतलता की वर्षा करती है।

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम्।
उभाभ्यामेताभ्यामुदयविधिमुद्दिश्य दयया
सनाथाभ्यां यज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्।।४१।।

हे माता! आपके मूलाधार में लास्यपरा (नृत्य करती हुई) समया देवी के साथ महाताण्डव करते नवात्मा शिव का मैं चिन्तन और ध्यान करता हूँ। जननी और जनक की भाँति ये ही जगत की सब प्रकार से रक्षा करते हैं तथा इन्हीं के आश्रय के कारण यह जगत अपने को सनाथ मानता है। ।।४१।।

◆

शीतलाष्टक

विनियोग- अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव ऋषिः, अनुष्टुप् छंदः, शीलता देवता, लक्ष्मीर्बीजम्, भवानी शक्तिः, सर्व विस्फोटक निवृत्तये जपे विनियोगः।।

वन्देऽहं शीतलां देवीं, रासभस्थां दिगम्बराम्।
मार्जनी - कलशोपेतां, शूर्पालङ्कृतमस्तकाम्।।१।।
वन्देऽहं शीतलां देवीं, सर्वरोग - भयापहाम्।
यामासाद्य निवर्तेत, विस्फोटकभयं महत्।।२।।
शीतले शीतले चेति, यो ब्रूयाद्दाहपीडितः।
विस्फोटक - भयं घोरं, क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति।।३।।
यस्त्वामुदकमध्ये तु, धृत्यापूजयते नरः।
विस्फोटक - भयं - घोरं, गृहे तस्य न जायते।।४।।
शीतले ज्वरदग्धस्य, पूतिगंधयुतस्य च।
प्रनष्ट चक्षुषः पुंसस्त्वाहुर्जीवनौषधम्।।५।।
शीतले तनुजान् रोगान्नृणां हरसि दुस्त्यजान्।
विस्फोटक - विदीर्णानां त्वमेकाऽमृतवर्षिणी।।६।।

गलगण्ड-ग्रहा रोग ये चान्ये दारुणा नृणाम्।
त्वदनुध्यानमात्रेण, शीतले यान्ति संक्षयम्।।७।।
न मन्त्रो नौषधं तस्य, पाप-रोगस्य विद्यते।
त्वामेकां शीतले धात्री, नान्या पश्यामि देवताम्।।८।।
मृणाल-तन्तु-सदृशी, नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम्।
यस्त्वां संचिंतयेद् देवि, तस्य मृत्युर्न जायते।।९।।
अष्टकं शीतला - देव्याः यो नरः प्रपठेत् सदा।
विस्फोटकभयं घोरं, गृहे तस्य न जायते।।१०।।
श्रोतव्यं पठितव्यं च श्रद्धा-भक्ति-समन्वितैः।
उपसर्ग विनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत्।।११।।
शीतले त्वं जगन्माता, शीतले त्वं जगत्-पिता।
शीतले त्वं जगद्धात्री, शीतलायै नमो नमः।।१२।।
रासभो गर्दभश्चैव खरो वैशाख - नन्दनः।
शीतला-वाहनश्चैव, दूर्वा - कंद - निकृन्तनः।।१३।।
एतानि खरनामानि शीतलाग्रे तु यः पठेत्।
तस्य गेहे शिशूनां च शीतला रुङ् न जायते।।१४।।
शीतलाष्टकमेवेदं न देयं यस्य कस्यचित्।
दातव्यं च सदा तस्मै श्रद्धा भक्ति-युताय च।।१५।।

(इति श्रीस्कन्दपुराणे शीतलाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम्)



श्री बटुकभैरव का ध्यान एवं मंत्र

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणि-
स्तरुणतिमिरनीलव्यालयज्ञोपवीती।
क्रतुसमयसपर्य्याद्विघ्नविच्छेदहेतु-
र्जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम्।।

मंत्र

ॐ बं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं



नवग्रह स्तोत्र

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।।१।।
दधिशंखतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम्।।२।।
धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम्।।३।।
प्रियंगुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्।।४।।
देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसन्निभम्।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्।।५।।
हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्।।६।।
नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्।
छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम्।।७।।
अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम्।
सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम्।।८।।
पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम्।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्।।९।।
इति व्यासमुखोद्गीतं यः पठेत्सुसमाहितः।
दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्न शान्तिर्भविष्यति।।१०।।
नरनारीनृपाणां च भवेद् दुःस्वप्ननाशनम्।
ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्द्धनम्।।११।।
ग्रहनक्षत्रजाः पीडास्तस्कराग्निसमुद्भवाः।
ताः सर्वाः प्रशमं यान्ति व्यासो ब्रूते न संशयः।।१२।।

०००

नवग्रह कवच

ॐ शिरो मे पातु मार्त्तण्डः कपालं रोहिणीपतिः।
मुखमङ्गारकः पातु कण्ठं च शशिनन्दनः।।१।।
बुद्धिं जीवः सदा पातु हृदयं भृगुनन्दनः।
जठरं च शनिः पातु जिह्वां मे दितिनन्दनः।।२।।
पादौ केतुः सदा पातु वाराः सर्वाङ्गमेव च।
तिथयोऽष्टौ दिशः पातु नक्षत्राणि वपुः सदा।।३।।
अंशौ राशिः सदा पातु योगाश्च स्थैर्यमेव च।



नवग्रह पीडाहर स्तोत्र

ग्रहाणामादिरादित्यो लोकरक्षणकारकः।
विषमस्थानसंभूतां पीड़ां हरतु मे रविः।।१।।
रोहिणीशः सुधामूर्तिः सुधागात्रः सुधाशनः।
विषमस्थानसंभूतां पीडां हरतु मे विधुः।।२।।
भूमिपुत्रो महातेजा जगतां भयकृत्सदा।
वृष्टिकृद्दृष्टिहर्ता च पीडां हरतु मे कुजः।।३।।
उत्पातरूपो जगतां चन्द्रपुत्रो महाद्युतिः।
सूर्यप्रियकरो विद्वान्पीडां हरतु मे बुधः।।४।।
देवमन्त्री विशालाक्षः सदा लोकहिते रतः।
अनेकशिष्यसंपूर्णः पीडां हरतु मे गुरुः।।५।।
दैत्यमन्त्री गुरुस्तेषां प्राणदश्च महामतिः।
प्रभुस्ताराग्रहाणां च पीडां हरतु मे भृगुः।।६।।
सूर्यपुत्रो दीर्घदेहो विशालाक्षः शिवप्रियः।
दीर्घचारः प्रसन्नात्मा पीडां हरतु मे शनिः।।७।।
महाशिरा महावक्त्रो दीर्घदंष्ट्रो महाबलः।
अतनुश्चोर्ध्वकेशश्च पीडां हरतु मे शिखी।।८।।
अनेकरूपवर्णैश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
उत्पातरूपो जगतां पीडां हरतु मे तमः।।९।।

।।इति नवग्रह पीडाहर स्तोत्रम्।।



नवग्रह गायत्री

ॐ आदित्याय विद्महे प्रभाकराय धीमहि तन्नो सूर्यः प्रचोदयात्।
ॐ अमृताङ्गाय विद्महे रूपाय धीमहि तन्नो सोमः प्रचोदयात्।
ॐ अंगारकाय विद्महे शक्ति हस्ताय धीमहि तन्नो भौमः प्रचोदयात्।
ॐ सौम्य रूपाय विद्महे वाणेशाय धीमहि तन्नो बुधः प्रचोदयात्।
ॐ आगिंरसाय विद्महे दण्डायुधाय धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्।
ॐ भृगुसुताय विद्महे दिव्यदेहाय धीमहि तन्नो शुक्रः प्रचोदयात्।
ॐ सूर्यपुत्राय विद्महे मृत्युरूपाय धीमहि तन्नो सौरिः प्रचोदयात्।
ॐ शिरोरूपाय विद्महे अमृतेशाय धीमहि तन्नो राहुः प्रचोदयात्।
ॐ गदाहस्ताय विद्महे अमृतेशाय धीमहि तन्नो केतुः प्रचोदयात्।
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।



शनि स्तोत्र

कोणस्थः पिंगलो वभ्रुः कृष्णो रौद्रान्तको यमः,
सौरिः शनिश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः।
एतानि दश नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्,
शनिश्चर कृता पीड़ा न कदांचित् भविष्यति।।



शनि भार्या स्तोत्र

ध्वजिनी धामिनी चैव कंकाली कलह-प्रिया,
कलही कंटकी चापि अजा महिषी तुरंगमा।
नामानि शनि-भार्यायाम् नित्यं जपति यः पुमान्,
तस्य दुःखानि नश्यन्ति सुखं सौभाग्यमेधते।।



विन्ध्यवासिनी प्रार्थना

दैत्य संहारन वेद विचारन, दुष्टन को तुमहीं खलती हो।
खड्ग त्रिशूल लिये धनुबान, औ सिंह चढ़ै रण में लड़ती हो।
दास के साथ सहाय सदा, सो दया करि आन फते करती हो।
मोहिं पुकारत देर भई, जगदम्ब विलम्ब कहाँ करती हो।।१।।
आदि की ज्योति गणेश की मातु, कलेश सदा जन के हरती हो।
की कहुँ दैत्यन युद्ध भयो तहँ, श्रोणित खप्पर लै भरती हो।
की कहुँ देवन आस कियो तहँ धाय त्रिशूल सदा धरती हो।
मोहिं पुकारत देर भई, जगदम्ब विलम्ब कहाँ करती हो।।२।।
सेवक से अपराध परो कछु, आपन चित्त में ना धरती हो।
दास के काज सँभारि नितै जन, जानि दया को मया करती हो।
शत्रु के प्राण संहारन को, जग तारन को तुम सिंधु सती हो।
मोहिं पुकारत देर भई, जगदम्ब विलम्ब कहाँ करती हो।।३।।
की तो गई बलि संग पाताल कि तो, पुनि ज्योति अकाशगती हो।
किधों काम परो हिंगलाजहि में, कै सिंधु के विन्दु में जा छिपती हो।
जुग्गुल चोर लबारन को बटुवारन को तुमहूँ डरती हो।
मोहिं पुकारत देर भई, जगदम्ब विलम्ब कहाँ करती हो।।४।।
बान शिरान कि सिंह हेरान, कि ध्यान धरे प्रभु को जपती हो।
की कहुँ सेवक कष्ट परो तहँ, अष्टभुजा बल दे लड़ती हो।
सिह चढ़े देवि छत्र विराजत, लाल ध्वजा रण में फिरती हो।
मोहिं पुकारत देर भई, जगदम्ब विलम्ब कहाँ करती हो।।५।।
देवि तुम्हारि करौं विनती, इतना तुम काज करौ सुमती हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश किधौं रथ हाँक सदा जग में फिरती हो।
चंडहिंमुंडहिं जाय बधो तब, जाय के शत्रु निपात गती हो।
मोहिं पुकारत देर भई, जगदम्ब विलम्ब कहाँ करती हो।।६।।
मारि दियो महिषासुर को, हरि केहर को तुमही पलती हो।
मधु कैटभ दैत्य विध्वंस कियो, नर देवन के पति ईशपती हो।
दुष्टन मारि आनन्द कियो निज, दासन के दुख को हरती हो।
मोहिं पुकारत देर भई, जगदम्ब विलम्ब कहाँ करती हो।।७।।

साधु समाधि लगावत हैं, तिनके तन को तू तुरत तरती हो।
जो जन ध्यान धरै तुमरो, तिनकी प्रभुता चित दै करती हो।
तेरो प्रताप तिहूँ पुर में, तुलसी जन की मनसा भरती हो।
मोहिं पुकारत देर भई, जगदम्ब विलम्ब कहाँ करती हो।।८।।

।।जय माता दी।।

◆

(२)

डिम डिम डमरू बजावे ला हमार जोगिया।
बूढ़ बैल पर सवार, चन्दा सोहे ला लिलार,
धार गंगा क बहावै ला हमार जोगिया।।डिम०।।
गले सोहे मुंड माला, वदन लपटे नाग काला,
छाला शेर क विछावे ला हमार जोगिया।।डिम०।।
रहे भूतन के संग, इनकर मति अड़भंग,
घूम घूम अलख जगावे ला हमार जोगिया।।डिम०।।
अइसन 'बावला' न कोई, जइसन भोला हमार होई,
माँगे जोई सोइ लुटावे ला हमार जोगिया।।डिम०।।

◆

(३)

हमरे भोला जी के भावेला मड़इया सजनी।
इन्हे न चहिये महल अटारी ना चहिये धन धाम,
देने की तो बान पड़ी है, लेने के हरि को नाम,
इनके भोजन भावे भाँग क पतइया सजनी
भूषण इनके बने हुये हैं काले काले नाग,
ज़हर पान ई जब से कइलन पड़ल कंठ में दाग़
इनके जटा से बहैली गंगा मइया सजनी
मुंडमाल को गले में धारे हाथ लिये तिरशूल
एक बूँद जल देने पर भी रहते हैं अनुकूल,
नाचै भुतवन के संग ताता थैया सजनी
डिमिक डिमिक डिम डमरू बजावैं सांप छोड़े फुफकारी
(अ) श्मसान की राख लगावैं, तिलक चन्द्रमा धारी
अइसन 'बावला' हौ बैल के चढ़वैया सजनी।।

(४)

भगियाँ पिये धतुरवा तोरि तोर खाय अरे मोर पगला भोला।
डम डम डम डम डमरू बजावै, भूतन के संग नाचै गावै,
नंगा अड़बंगा गंगाधर, चढ़ल बैल पर जाय।।अरे मोर पगला०।।
बगल दवाये केहरि छाला, गरवाँ पहिरे मुंड के माला,
(अ) श्मसान पर लोटै बुढ़वा, अलख जगाय जगाय।।अरे मोर०।।
साँप और बिच्छू, लपटावै, बेलपात कै पूजा भावै,
सर्दी और जुखाम न होला आठो पहर नहाय।।अरे मोर०।।
भिखमंगन कै भीर लगल बा, हर हर बम बम शोर मचल बा,
खाली जात न कोई 'बावला' सर्वस देत लुटाय।।अरे मोर०।।



(५)

डमड्डमडम डमरू बाजै पगला बम बम गावैला चढ़ल बैल पर आवैला।।
भूत संघाती, अति उतपाती, मुंड के माला नाग भी काला भँगिया पिये पिआवेला।।च०।।
नागिन काली जीभ निकाली, गंगा लट पर गंगा तट पर लोटे भसम लगावै ला।। चढ़ल०।।
अवढर दानी अमर कहानी सबके देलैं कुछ ना लेलैं वन वन धुनी रमावैला।।चढ़ल०।।
बड़ा भयंकर बुढ़ऊ बाटैं, सिरवा पर किरवा कै पाँत।
जुड़वा में दुलहिन चमकत बा, चम चम चमकत बार तोहार।।
अजगर खेलत बा कोराँ में, बैठल बा कंधे पर नाग।
लागल पलटन भूत प्रेत कै, चढ़ जालन ऊ लेले लाग।।
पउवा भर ऊ कुचिला खालैं, मुहवाँ से उगिलै लन झाग।
ज़हर घोर के शरबत पीये लैं जोगी भूतन में बाँट।।
लक्कड़ फक्कड़ औघड़ जोगी, बम बम करै मसानी जाग।
भाँग, धतूरा, सुर्ती फाकैं, जइसे चौराई के साग।।
देख तमाशा, चले बेताशा, लड़िका चले दुआरी भाग।
बाबू माई कहके रोवैं, बाबा जान बचावा आय।।
आँस पोछ के बुढ़ऊ बोलैं, का बचवा गइला बौराय।
इस समाज हौ शंकर जी कै, आज दया हमहन पर बाय।।
भोला भाला पहिरे छाला, कबहूँ न खीझै जल्दी रीझै, पर 'बावला' कहा वैला।। च०।।



(६)

केतना भिखारी अइलैं तोहरी दुआरी,
झोली तनि आपन खोला हो भोले बाबा।
आसरा लगा के अइलैं, सब बिसरा के अइलैं,
जिनगी लुटाके माँगें हथवा पसारी।।झोली०।।
द्वार से लउट जइहैं, खाली हाथ फिर का करिहैं,
गइहैं न गुनवाँ केहू से आज से अगारी।।झोली०।।
दानी दानी शोर भइलैं दुनियाँ अजोर भइलै
मनवाँ त दुख होई उनके भारी।।झोली०।।
दीनता बटोर लेके, आँखी में लोर लेके,
भाग्य अजमावै अइलैं- 'बावला' भिखारी।।झोली०।।

◆

(७)

कबले अनाथ रखबा बाबा विश्वनाथ हो।
कबले धीरज राखी पगला परनवाँ, कबले मनाईं नाथ मनवाँ नयनवाँ,
लजिया हमार सरकार तोहरे हाथ हो।।कबले अनाथ०।।
रखला जवन ढंगं रहली और रहबै, दूसरा के चहली न दूसरा के चहबै,
दूसरे के अगवाँ झुकइबै न माथ हो।।कबले अनाथ०।।
दास पथ छोड़के हिमतिया बटोर के, एक बात कहीं नाथ आज कर जोर के,
रउरो त बाटै बदनामी हमरे साथ हो।।कबले अनाथ०।।
मुक्ति न मुक्ता न माँगी दौलतिया, एक बार देख लेइत 'मंगल' मुरतिया,
इहै एक विनती पुजादा भोले नाथ हो।।कबले अनाथ०।।

◆

(८)

जेकर बाबा विश्वनाथ ऊ अनाथ कइसे।
जवन दुआरी सब दिन से दयाल हो,
जहवाँ भिखारी जाके भइलैं महि पाल हो,
कोई उहवाँ से लौटी खाली हाँथ कइसे।।जेकर बाबा०।।

जेकि जग हेतु विष पान कइ गइलन,
परत नज़र मार छार होइ गइलन,
ओकरे भक्त के सतइहैं रति नाथ कइसे।।जेकर बाबा०।।
बिच्छू विषधर के जे हियरा लगावैला, जेकि भूत प्रेत के सप्रेम अपनावै ला,
अपने भक्त के भुलइहैं भूतनाथ कइसे।।जेकर बाबा०।।
जेकि गौरीश क सतत गुन गावैला,
जेकि आंपन शीश भोलेनाथ के झुकावैला
ओकर दुनियाँ के आगे झुकी माथ कइसे।।जेकर बाबा०।।
जेहौ विश्वनाथ ऊ अनाथ रहै देई, जे हौ शशि भाल ऊ अन्हार रहै देई,
रही दुख 'मंगल' के साथ कइसे।।जेकर बाबा०।।



(९)

लगल रहीं सेवा में राउर, कबौं गिरै ना भाव ए बाबा मत करिहा अलगाव।
बहु चर्चित हौ विरद आपक, कतहूँ केहू न रउरे नाप क,
नंगा अड़बंगा गंगाधर बोझिल हमरी नाव।।हे बाबा०।।
अवगुन खान अकल्पित रेखा, आपन जान दोष मत देखा,
कपटी और कुराही जन क कबहूँ लगे ना दाँव।।हे बाबा०।।
कउनो जोनि जनम जहाँ पाईं, चरण छोड़के अनत न जाईं,
सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलयुग, पुनि पुनि आवौ जाव।।हे बाबा०।।
बनल रहीं काशी के बासी, तीन लोक में होय न हाँसी,
एतनै बस अरदास बावला डम डम डमरू सुनाव।।हे बाबा०।।



(१०)

जेकरे शरण में गइले रहत न कउनो दोष मितवा
हमरे बाबा विश्वनाथ क भरोस मितवा
बाबा के दरबार में आवैं निसदिन भूखा नंगा,
कबहूँ खाली हाथ लउट के ना जालैं भिखमंगा,
जहवाँ जीव चराचर सबही के संतोष मितवा।।हमरे०।।

जहर हलाहल अपने खालैं, तन पर एक लंगोटी,
राम न जानैं कहाँ से देलैं सबके कपड़ा रोटी,
उनके हथवा में दुनिया भर कै कोष मितवा।।हमरे०।।
तीन लोक अनुमान के देखल, कहूँ न अइसन दाता,
अनहोनी भी होनी होला, लिखके थके विधाता,
हर हर महादेव कहले पर आवै जोश मितवा।।हमरे०।।
भूत-प्रेत परिवार बा जेकर, गोजर विच्छू कीरा,
एक चुटकी राखी से करदेलैं ऊ मोती हीरा,
सागर छोड़ 'बावला' व्यर्थ चाट मत ओस मितवा।।हमरे०।।



(११)

दुनियाँ में चार दिन क जिनगी क खेल बा, झमेल कउने काम कै।
जाये के अकेल बाय झमेल कउने काम कै।।
कंचन महल दहल जाई पगला, पंछी महल से निकल जाई पगला।
हम हम कइले विचार तोर फेल बा।।झमेल०।।
खायले खवाय ले बनाय ले बसाय ले, बिगड़ल पहिले क अबहीं बनायले।
नाहीं जानी दियना में केतना रे तेल बा।।झमेल०।।
सपना के अपना समुझि अरुझइले, घर के न घाट के न कतहूँ के भइले।
टूट जाई गाड़ी तूफान मेल रेल बा।।झमेल०।।
होई परतीत प्रीत करले तूँ राम से, नाम से न भाग भाई भाग बुरे काम से।
मोर तोर 'बावला' बेकार क दलेल बा।।झमेल०।।



(१२)

आज बिहंस ले मौज उड़ाले, फिर पीछे पछताना होगा
खाली हाथ रवाना होगा।
पड़ेगी जब तारीख तुम्हारी, निकलेगी जब तेरी सवारी।
सुंत परिवार छोड़के अपना, सिर्फ अकेले जाना होगा।।खाली०।।
समझ रहा है सबको अपना, तेरे मन की झूठ कलपना।
राम नाम ही सत्य और सब, बाकी झूठ जमाना होगा।।खाली०।।
है प्रमाण आने वालों का, दुनिया से जाने वालों का।

किया नहीं सत्कर्म रे बन्दे, आखिर आँस बहाना होगा।।खाली०।।
माया के संग में धोखा है, अभी चेत ले कुछ मौका है।
बना रह गया अगर 'बावला' स्वर्ग में धोखा खाना होगा।।खाली०।।



(१३)

दुर्गा माई कै चरनियाँ पूजै दुनियाँ।
मैहर में माँ बनी शारदा कलकत्ते में काली।
विन्ध्याचल में विन्ध्य वासिनी आठ भुजाओं वाली।
चढ़ै नरियर और चुनरिया पूजे दुनियाँ।।दुर्गा०।।
अँधरा पुजलेस अँखिया पउलेस कोढ़िया निर्मल काया।
भक्तन के माँ भक्ति देहलू, औ निर्धन के माया।
लाखों तर गइलीं बझिनियाँ पूजे दुनियाँ।।दुर्गा०।।
आदि शक्ति की करके पूजा विजय राम ने पाई।
अत्याचारी रावन के देहलू सुरधाम पठाई।
रखलू रामा दल कै पनियाँ पूजै दुनियाँ।।दुर्गा०।।
जो कोइ माँ का ध्यान लगावे, मन वांछित फल पावै।
जनम जनम के दुःख टल जाये, मुक्त अमर हो जाये।
बन जाई जिन्दगनियाँ पूजे दुनियाँ।।दुर्गा०।।



(१४)

मइया तनी आवा हमरी टेर सुनके, पूजा करब तोरे चरनन के।
दुःखवा में पास कोई भूल के न आवै, सुखवा त सब कोई आइके बटावै।
आवा मइया पोछा हमरे अँसुवन के।।पूजा करब०।।
तोहरे मंदिरवा में निसदिन पुकारीं, निसदिन तोहरे मइया मुहवाँ निहारीं।
तरसे नयन तोरे दरसन के।।पूजा करब०।।
तोहरे मंदिरवा में पाईं सुख चैनवाँ, तोहरे भजनियाँ से खुश होला मनवाँ।
गरवाँ लगाला हम भक्तन के।।पूजा करब०।।
नाहीं माँगू सोनवा औ नाहीं माँगू चनियाँ, हमके त चाही बस तोहरे चरनियाँ।
रखिहा लगाके मइया चरनन से।।पूजा करब०।।



(१५)

देखत वाटू न जानी कहाँ से, कि दूर परीला देखाइत नाहीं।
भाग्य हमार हमें डहकावत, सोचल आवत साइत नाहीं।
पौरि के पाईं पता जहवाँ, कहवाँ हम माथ झुकाइत नाहीं।
माई तोहार बड़ा आसरा, तोहके हम आपन पाइत नाहीं।।

◆

(१६)

मुरतिया मैया कै नीक लागै।
मइया के तन में चुनरी सोहे, किनरिया देख नीक लागै।।मु०।।
मइया के माथे टीका सोहे, सेन्हुरवा देख नीक लागै।।मु०।।
मइया के काने कुंडल सोहे, झुमकवा देख नीक लागै।।मु०।।
मइया के नाक में झूलनी सोहे, हलनियाँ देख नीक लागै।।मु०।।
मइया के गले में माला सोहे, हरवा देख नीक लागै।।मु०।।
मइया के हाँथे तोड़ा सोहे, कगनवाँ देख नीक लागै।।मु०।।
मइया के कटि में किंकिणि सोहे, लटकनियाँ देख नीक लागै।।मु०।।
मइया के पउआँ में पायल सोहे, घुँघुरुवा बाजत के नीक लागै।।मु०।।
बलि बलि जायें 'होरी' मूरत पर, विमल यश गावत के नीक लागै।।

◆

(१६)

खींच ले तूँ पपिया बदनियाँ से सरिया, जाने मत द्रौपदी डेराय जइहैं,
मोर बिरना विपतिया में आइ जइहैं।
जाने मत पाँचो पती जुअवा में हारके, जाइके बइठ गइलैं मन आपन मारके
तोर कुल अभिमनवा मेटाय जइहैं।।मोर बिरना०।।
खींच, खींच, खींच, तोर हाँथ थक जाई, तन ना उघार होई सरिये देखाई,
लाख मन सरिये ओढ़ाय देइहैं।।मोर बिरना०।।
गज कै पुकार सब लोगन के याद बाय, ईत उनके खास बहिनी के फरियाद बाय,
मोर राखी कै करजा चुकाय देइहैं।।मोर बिरना०।।
करुण पुकार पै ई द्वारिका न दूर बाय, बिरना से नाहीं कोई दुनियाँ में सूर बाय,
कइसे आपन बिरद ऊ भुलाय जइहैं।।मोर बिरना०।।
देख नीचे ऊपराँ तूँ आगइलैं भइया, जोर अजमाव हउवैं कुवँर कन्हैया,
मोर अमर पिरितिया निबाह देइहैं।।मोर बिरना०।।

(१७)

पुरब से आवैलैं पच्छिम देश जइबा हो बिरन बदरा,
मोरा लिहले जा सनेसवा हो बिरन बदरा
रंग होई साँवला मुकुट मोर माथ हो, गले वनमाल और मुरलिया बीच हाँथ हो,
मुहवाँ लखत होइहैं लाख लोग साथ हो बिरन बदरा,
हौ अनूप रूप वेशवा हो बिरन बदरा।।मोरा लिहले जा सनेसवा०।।
निठुर कन्हाई मोसे नेहिया लगाके, मथुरा में बसलैं बिरिज बिसराय के,
गाय, गोप, गोपी मर जइहैं विष खाय कै बिरन बदरा।
जिया एक सौ कलेशवा हौ बिरन बदरा।।मोरा लिहले०।।
कहि देइहा सारा ब्रज बेकल बरसात में, मिलैना चयनवाँ न दिन अरु रात में,
जमुना झुरात फल पात मुरझात हो बिरन बदरा
अफनात भर देसवा हो बिरन बदरा।।मोरा लिहले०।।
दया धाम हउवा दया एतना देखाय दा, पतिया न भेजा त मउतिया पठाय दा,
'मंगल' बदन एक बेर दिखराय दा बिरन बदरा
बाटै तोहरै एक भरोसवा हो बिरन बदरा।।मोरा लिहले०।।



(१८)

माँ मुरादें पूरी कर दे हलुआ बाँटूँगी।
सन्तों महन्तों को बुलाके, घर में कराऊँ जगराता।
सुनती है सबकी फरियादें, मेरी भी सुन लेगी माता।
दाती तुम्हारा लेके सहारा, दर पै आऊँगी मैं आऊँगी मनाऊँगी आऊँगी २ आऊँगी (माँ०)
भवन तेरा है सबसे ऊँचा माँ, और गुफा तेरी न्यारी।
भाग्य विधाता जोता वाली माँ, कहती है दुनियाँ सारी
कृपा करेगी झोली भरेगी, दर पै आऊँगी आऊँगी आऊँगी (माँ०)
कृपा करो मेरी रानी माँ छाया है ग़म का अंधेरा।
तेरे सिवा मेरा कोई ना, हमको भरोसा है तेरा।
झोली भरेगी संकट हरेगी, दर पै आऊँगी, मनाऊँगी, आऊँगी आऊँगी आऊँगी (माँ०)
विनती सुनो वरदानी माँ, आया हूँ बनके सवाली।
गोदी भरो मेरी रानी माँ, गोद है लाल से खाली।
भाग्य जगादे बिगड़ी बना दे, दर पै आऊँगी आऊँगी आऊँगी (माँ०)

पल भर के लिये आओ मेरी मातु हँसते हँसते मेरी मातु हँसते हँसते।
तेरा जलवा देखने को बिछे नैन रसते रसते बिछे नैन रसते रसते।।
जीवन के उलझनों से माता मुझे बचालो माता० २
कहीं फिर से फँस न जाये तेरा लाल बचते बचते तेरा लाल बचते बचते।।
जीवन है बहुत थोड़ा आ जाओ शेरा वाली आजाओ० २
बिन दीद रुक न जाये कहीं साँस चलते कहीं साँस चलते चलते।।
है भोला नाथ तेरे इस जोति का दिवाना इस जोति० २
तेरा गीत लिख रहा है दिन रात जगते जगते दिन रात जगते जगते।।



(२०)

माँ हमारा ध्यान रखना हम तेरी संतान हैं।
माँ हमारे साथ रहना हम अभी नादान हैं।।
तूँ है पापों की उधारक, मैं हूँ पापों से भरा,
पतित पावन आप हो बस ये हमें अभिमान है।।माँ०।।
ओट कर हम पाप करते हैं, बड़ी चतुराई से,
कर्म जो जो करते निसदिन वो सभी विद्यमान हैं।।माँ०।।
पुत्र तो कपूत होते, पर न मातु कुमातु हो,
फिर भी जो सेवा से चूके वो भी क्या इन्सान है।।माँ०।।



(२१)

जय दुर्गे दुर्गति परिहारिणि, शुम्भ विदारिणि मात भवानी।।जय०।।
आदि शक्ति पर ब्रह्म स्वरूपिणि, जग जननी चहुँ वेद बखानी।।जय०।।
ब्रह्मा, शिव, हरि, अर्चन कीन्हो, ध्यान धरत सुर नर मुनि ज्ञानी।।जय०।।
अष्ट भुजा कर खड्ग विराजे, सिंह सवार सकल वरदानी।।जय०।।
ब्रह्मानन्द शरण में आयो, भव भय नाश करो महारानी।।जय०।।



(२२)

जय जगदीश्वरि मातु सरस्वति, शरणागत प्रति पालन हारी।।
चन्द्र किरण सम वदन विराजे, शीश मुकुट माला गल धारी।।जय०।।
वीणा वाम अंग में सोहे, साम गीत ध्वनि मधुर पियारी।।जय०।।
श्वेत बसन कमलासन सुन्दर, संग सखी शुभ हंस सवारी।।जय०।।
ब्रह्मानन्द मैं दास तुम्हारो, दे दर्शन परब्रह्म दुलारी।।जय०।।



(२३)

पतितन क सरदार समुझ के या कहीं औरो ठौर उलझ के
कउने कारन हमें भुलइया हे गौरी के दुलहा।
कइसन दया दयालु तुम्हारी मोरे समुझ ना आवे,
वेद शास्त्र और संत मंडली दानी तोहें बताबे,
सारे विश्व विदित हो गइला हे गउरी के दुलहा।।
हम जाचक दरबार में आवत जात गयल दिन ढेर,
हर हर बम बम कहत कहत संझा से भयल सबेर,
लेकिन तनिको ख्याल न कइला हे गौरी के दुलहा।।
अगर नहीं कुछ दे सकते तो, मेरा न कोई दावा,
मगर दयालू अपने अइसन दानी कोई बतावा,
बोला जल्दी काहें चुपइला हे गौरी के दुलहा।।कौने०।।
की वह भोला हृदय नहीं है या कोई औरो बात,
की घट गया ख़ज़ाना तेरा हमें न कछु समुझात,
या पी भंग 'बावला' भइला हे गौरी के दुलहा।।कौने०।।



- सत्य की रक्षा के लिए सहना तप है।
- जो भगवान से अविभक्त है वही भक्त है।
- प्रेम से ही परमात्मा को पाना संभव है।
- चित्त शुद्ध हो जाए तो उसमें भक्ति जन्मती है।

गणेश जी की आरती

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा।
माता जाकी पार्वती पिता महादेवा।।
पान चढ़े फूल चढ़े और चढ़े मेवा।
लड्डुवन को भोग लगे संत करे सेवा।।जय०।।
एकदंत दयावंत चार भुजा धारी।
मस्तक सिन्दूर सोहे मूस की सवारी।।जय०।।
अन्धन को आँख देतं कोढ़िन को काया।
बाँझन को पुत्र देत निर्धन को माया।।जय०।।



लक्ष्मी जी की आरती

ॐजय लक्ष्मी माता, (मैया) जय लक्ष्मी माता।
तुमको निशिदिन सेवत, हर-विष्णू-धाता।।ॐ।।
उमा, रमा, ब्रह्माणी, तुम ही जग-माता।
सूर्य-चन्द्रमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता।।ॐ।।
दुर्गारूप निरंजनि, सुख - सम्पति - दाता।
जो कोई तुमको ध्यावत, ऋधि-सिधि-धन पाता।।ॐ।।
तुम पाताल निवासिनि, तुम ही शुभदाता।
कर्म-प्रभाव-प्रकाशिनि, भवनिधि की त्राता।।ॐ।।
जिस घर तुम रहती, तहँ सब सद्गुण आता।
सब संभव हो जाता, मन नहिं घबराता।।ॐ।।
तुम बिन यज्ञ न होते, वस्त्र न हो पाता।
खान-पान का वैभव, सब तुमसे आता।।ॐ।।
शुभ-गुण-मंदिर सुन्दर, क्षीरोदधि-जाता।
रत्न चतुर्दश तुम बिन, कोई नहिं पाता।।ॐ।।
महालक्ष्मी (जी) की आरति, जो कोई नर गाता।
उर आनन्द समाता, पाप उतर जाता।।ॐ।।

दुर्गाजी की आरती

जय अम्बे गौरी मैया जय मंगल मूर्ति।
मैया जय आनन्द करणी।
तुमको निशि-दिन ध्यावत हरि-ब्रह्मा-शिवरी।।जय०।।
माँग सिन्दूर विराजत टीको मृगमद को।
उज्ज्वल से दोउ नैना, चन्द्रवदन नीको।।जय०।।
कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै।
रक्तपुष्प गलमाला, कण्ठन पर साजै।।जय०।।
केहरि-वाहन राजत, खड्ग-खप्पर धारी।
सुर-नर-मुनि-जन सेवत,, तिनके दुखहारी।।जय०।।
कानन - कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती।
कोटिक चन्द्र दिवाकर सम राजत ज्योती।।जय०।।
शुम्भ - निशुम्भ बिदारे, महिषासुर-घाती।
धूम्रविलोचन नैना निशिदिन मदमाती।।जय०।।
चण्ड-मुण्ड संहारे शोणित - बीज हरे।
मधु-कैटभ दोउ मारे सुर भयहीन करे।।जय०।।
ब्रह्माणी, रुद्राणी, तुम कमला - रानी।
आगम-निगम बखानी, तुम शिव-पटरानी।।जय०।।
चौसठ-योगिनि गावत, नृत्य करत भैरूँ।
बाजत ताल मृदंगा और बाजत डमरूँ।।जय०।।
तुम ही जगकी माता, तुम ही हो भरता।
भक्तन की दुःख हरता, सुख सम्पति करता।।जय०।।
भुजा चार अति शोभित, वर-मुद्रा धारी।
मनवांछित फल पावत, सेवत नर-नारी।।जय०।।
कंचन थाल विराजत अगर कपूर बाती।
श्री मालकेतु में राजत कोटि रतन ज्योती।।जय०।।
माँ अम्बेजी की आरती जो कोई नर गावै।
कहत शिवानँद स्वामी, सुख सम्पत्ति पावै।।जय०।।

◆

शंकर जी की आरती

ॐ जय शिव ओंकारा, जय शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्द्धङ्गी धारा।।
ॐ हर हर महादेव।।१।।

एकानन चतुरानन पंचानन राजै।
हंसानन गरुड़ासन वृषवाहन साजै।।
ॐ हर हर महादेव।।२।।

दो भुज चारु चतुर्भुज दस भुज ते सोहै।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवन-जन मोहै।।
ॐ हर हर महादेव।।३।।

अक्षमाला वनमाला रुण्डमालाधारी।
चन्दन मृगमद सोहे भोले शशिधारी।।
ॐ हर हर महादेव।।४।।

श्वेताम्बर पीताम्बर बाघम्बर अंगे।
सनकादिक ब्रह्मादिक भूतादिक संगे।।
ॐ हर हर महादेव।।५।।

कर में श्रेष्ठ कमण्डलु चक्र त्रिशूलधरता।
जगहर्त्ता जगकर्त्ता जगपालनकर्त्ता।।
ॐ हर हर महादेव।।६।।

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव जानत अविवेका।
प्रणव अक्षर के मध्ये यह तीनों एका।।
ॐ हर हर महादेव।।७।।

त्रिगुण स्वामि की आरती जो कोई नर गावै।
भनत शिवानन्द स्वामी मनवांछित फल पावै।।
ॐ हर हर महादेव।।८।।



जगदीश्वर प्रभु की आरती

ॐजय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे।।
भक्तजनों के संकट छिन में दूर करे।।ॐ।।
जो ध्यावै फल पावै दुःख बिनसै मन का।।प्रभु०।।
सुख-सम्पत्ति घर आवै, कष्ट मिटै तन का।।ॐ।।
मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।।प्रभु०।।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी।।ॐ।।
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।।प्रभु०।।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी।।ॐ।।
तुम करुणा के सागर, तुम पालन-कर्त्ता।।प्रभु०।।
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता।।ॐ।।
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपती।।प्रभु०।।
किस बिधि मिलूँ दयामय! मैं तुमको कुमती।।ॐ।।
दीनबन्धु दुःखहर्ता, तुम ठाकुर मेरे।।प्रभु०।।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे।।ॐ।।
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।।प्रभु०।।
श्रद्धा-शक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा।।ॐ।।
तन-मन-धन प्रभु सब कुछ है तेरा।।प्रभु०।।
तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा।।ॐ।।



कृष्ण जी की आरती

आरती कुंजबिहारी की। श्रीगिरधर कृष्णमुरारी की।।
गले में बैजंतीमाला, बजावै मुरलिमधुर बाला।
श्रवण में कुण्डल झलकाला,
नंद के आनँद नँदलाला। श्रीगिरधर कृष्णमुरारी की।।
गगन सम अंग कांति काली, राधिका चमक रही आली।
लतन में ठाढ़े वनमाली,

भ्रमर-सी अलक, कस्तुरी-तिलक, चंद्र-सी झलक,
ललित छबि स्यामा प्यारी की। श्रीगिरधर कृष्णमुरारी की।।
कनकमय मोर - मुकुट बिलसै, देवता दरसनकों तरसै,
गगन सों सुमन रासि बरसै,
बजे मुरचंग, मधुर मिरदंग, ग्वालनी संग,
अतुल रति गोपकुमारी की। श्रीगिरधर कृष्णमुरारी की।
जहाँ ते प्रकट भई गंगा, कलुष कलि हारिणि श्रीगंगा,
स्मरण ते होत मोह-भंगा,
बसी सिव सीस, जटा के बीच, हरै अघ-कीच,
चरन छबि श्रीबनवारी की, श्रीगिरधर कृष्णमुरारी की।।
चमकती उज्ज्वल तट रेनु, बज रही वृन्दावन बेनु,
चहूँ दिसि गोपि ग्वाल धेनु,
हँसत मृदु मंद, चाँदनी चंद, कटत भव - फंद,
टेर सुने दीन भिखारी की। श्रीगिरधर कृष्णमुरारी की।।
आरती कुंजबिहारी की। श्रीगिरधर कृष्णमुरारी की।।

◆

भगवान राम की आरती

नख सिख छवि धर की, आरती करिये सियावर की।।टेक।।
लाल पीत अम्बर अति साजै, मुख निरखत सारद ससि लाजै।
तिलक चिलक भालन पर राजै, कुंकुम केसर की।।आ०।।
सीस फूल कुण्डल झलकतु है, चन्द्रहार मोती हलकतु है।
कर कंकन की छबि झलकतु है, जगमग दिनकर की।।आ०।।
मृदु तरुवन में अधिक ललाई, हास-बिलास न कछु कहि जाई।
चितवन की गति अति सुखदाई, मनहीं मन फरकी।।आ०।।
सिंहासन पर चँवर ढुरतु है, साज बजत जै जै उचरतु है।
आदर अस्तुति देव करतु है, लोटरनि अनुचर की।।आ०।।

◆

हनुमान जी की आरती

आरती कीजै हनुमान लला की।
दुष्टदलन रघुनाथ कला की।।टेक।।
जाके बल से गिरिवर काँपे।
रोग-दोष जाके निकट न झाँपै।।१।।
अंजनि - पुत्र महा बलदाई।
संतन के प्रभु सदा सहाई।।२।।
दे बीरा रघुनाथ पठाये।
लंका जारि सीय सुधि लाये।।३।।
लंका सो कोट समुद्र सी खाई।
जात पवनसुत बार लाई।।४।।
लंका जारि असुर संहारे।
सियारामजीके काँज सँवारे।।५।।
लक्ष्मण मूर्छित पड़े सकारे।
आनि संजीवन प्रान उबारे।।६।।
पैठि पताल तोरि जम - कारे।
अहिरावन की भुजा उखारे।।७।।
बायें भुजा असुर दल मारे।
दहिने भुजा संतजन तारे।।८।।
सुर नर मुनि आरती उतारे।
जै जै जै हनुमान उचारे।।९।।
कंचन थार कपूर लौ छाई।
आरति करत अंजना माई।।१०।।
जो हनुमान(जी) की आरती गावै।
बसि बैकुंठ परमपद पावै।।११।।



आरती श्री राणी सतीजी की

जय श्री राणी सती जी मैया, जय जगदम्ब सती जी।
अपने भक्तजनों की दूर करें विपती।।जय०।।
अवनी अन्तर ज्योति अखण्डित मंडित चहुँकुम्भा।
दुरजन दलन खड़ग की विद्युतसम प्रतिभा।।जय०।।
मरकत मणि मंदिर अति मंजुल, शोभा लखि न पड़े।
ललित ध्वजा चहुँ ओरे, कंचन कलश धरे।।जय०।।
घण्टा घनन घड़ाबल बाजत, शंख मृदंग घुरे।
किन्नर मातृका करें आरती, सुरगण ध्यान धरे।
विविध प्रकार के व्यंजन, श्रीफल भेंट धरे।।जय०।।
संकट बिकट विदारणि नाशनि हो कुमती।
सेवकजन हृदि पटले, सदा करन सुमती।।जय०।।
अमल कमल दल लोचनि, मोचनि त्रय तापा।
दास आयो शरण आपकी, लाज रखो माता।।जय०।।
श्री राणीसती मैयाजी की आरती, जो कोई नर गावे।
सदनसिद्धि नवनिधि, मनवांछित फल पावे।।जय०।।

◆

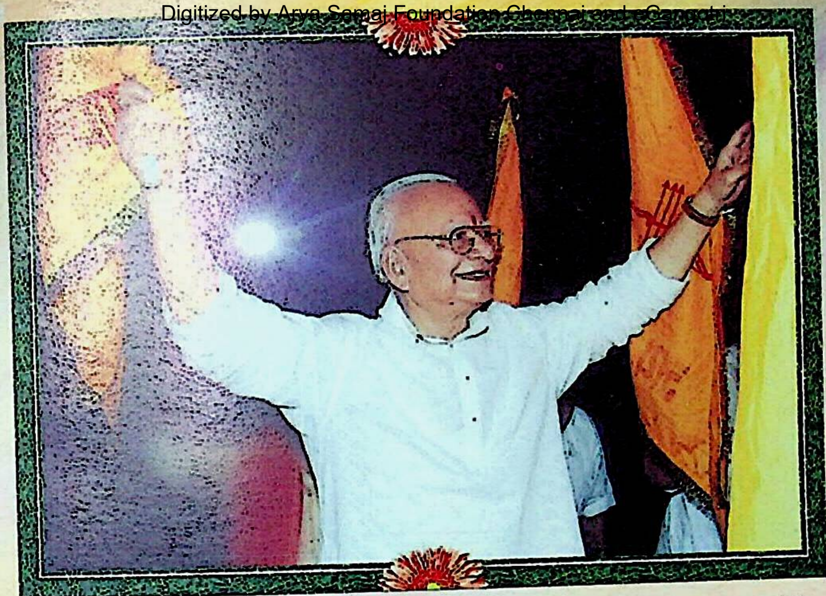
गुरु आरती

ध्यान मूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजा मूलं गुरोः पदम्।
मन्त्र मूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरोः कृपा।।
ॐ जय गुरुदेव हरे, स्वामी जय गुरु देव हरे।
पूरण ब्रह्म अजन्मा, नित सुख वेद ररे।।ॐ।।
शीतल शांत सदा इकरस, मन वाणी से परे।स्वामी।
कृपा कर वर दीजो, द्वितीया भाव जरे।[illegible]।
सबके प्रेरक सब के भीतर, सर्व रूप सदा।स्वामी।
नेति नेति श्रुति गावत, पावत नहीं भेदा।।ॐ।।
तुम्हरो ध्यान धरत नित, ब्रह्मा विष्णु हरे।स्वामी।

सहसर नाम उचारत, उपमा शेष करे।।ॐ।।
पूजा पूजक पूज्य, रूप सब आप धरे।स्वामी।
तुम हो सबमें व्यापक, सबसे हो न्यारे।।ॐ।।
प्रभु उपकार तुम्हारो, हमसे जाय न बरे।।ॐ।।
तपते तेल से निकास्यो, ऐसी कृपा करे।।ॐ।।
सब ज्योतिन की ज्योति, सूर्य चन्द्र तारे।स्वामी।
ले प्रकाश तुम्हारा, सब प्रकाश करे।।ॐ।।
की कुछ भेंट तुम्हारी, मिलकर दास करे।स्वामी।
तुम्हारी भेंट तुम्हारे हमसे कुछ ना सरे।।ॐ।।
दासन दास थारी आरति, चरणाँ के बीच करे।स्वामी।
कृपा दृष्टि निहारो, सिर पर हाथ धरे।।ॐ।।

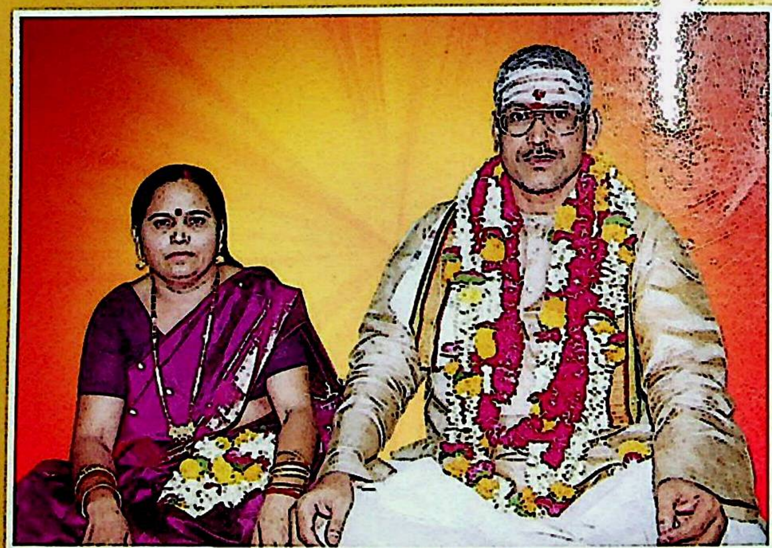


- अशुभ में आज और शुभ में कल मत करो।
- जन्म के साथ ही मृत्यु की यात्रा प्रारम्भ हो जाती है।
- जब तक 'कामराज्य' है तब तक 'रामराज्य' संभव नहीं।
- प्रभु स्मरण इस प्रकार हो कि संसार का विस्मरण हो जाय।
- सद्ग्रंथों का नित्य स्वाध्याय आवश्यक है।
- विचार, भाव और क्रिया का योग ही चरित्र है।
- सुंदर मन ही सुमन है।
- प्रश्न में जिज्ञासा और विनम्रता दोनों होनी चाहिए।
- संत का क्रोध भी कृपा का हेतु है।
- सत्य किसी सम्प्रदाय विशेष में आबद्ध नहीं किया जा सकता।
- प्रेम में जो दीक्षित करे वह धर्म है।
- मोह का क्षय भी मोक्ष है।
- निषिद्ध से बचो और कर्त्तव्य कर्म करते रहो।
- वासना पुनर्जन्म का कारण है।
- अविवेक पूर्वक विषयों को भोगना व्यभिचार है।



वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिनांक २७ मई ०८ को श्याम प्रभु की ध्वजयात्रा में
प्रसन्नतापूर्वक नाचते गाते श्री दीनानाथ झुनझुनवाला

वि[illegible] [illegible] [illegible] वादक श्री [illegible]शोक पाण्डेय का तबलावादन के उपरान्त
दुपट्टा पहनाकर [illegible]नित करते हुये श्री दीनानाथ झुनझुनवाला



प्रसन्न मुद्रा में आचार्य हरिहर कृपालु त्रिपाठी जी महाराज
साथ में श्रीमती किरन त्रिपाठी (माता जी)

D.G. Printers VNS